काशक—
श्यामलाल सत्यदेव वर्मा.
वैदिक आर्य-पुस्तकालय बरेली.

मुद्रक—
कालीचरन बनर्जी,
ऐंग्लो-ओरियन्टल प्रेस, लख

लेखकीय निवेदन

यह मानी हुई बात है कि जहाँ बड़े-बड़े उपदेशकों और व्याख्यान-दाताओं के ओजस्वी भाषणों से कुछ काम नहीं निकलता, वहाँ एक छोटे से चुटकुले (दृष्टान्त) से काम निकल जाता है। उसका प्रभाव मनुष्य के हृदय पर इस प्रकार पड़ता है कि वे अपने सिद्धान्तों को बदलकर अपने कार्य-क्रम को पलट देते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक इसी उद्देश्य से लिखी गई है। इसमें १०१ उत्तमोत्तम दृष्टान्तों का संग्रह है। इनके संग्रह में इस बात का विशेष ध्यान रक्खा गया है कि दृष्टान्त शिक्षा-प्रद और मनोरञ्जक हों। जहां तक हो सका है, इसकी लेखन-शैली चुटीली एवं चित्त में चुभनेवाली रक्खी गई है तथा बहुत से दृष्टान्तों के नीचे उससे निकलनेवाली उपयोगी शिक्षाएँ सरल और सुबोध भाषा में दृष्टान्त-रूप से लिख दी गई हैं, जिससे पाठकों के समझने में विशेष सुगमता हो। आख्यायिकाओं में वर्णित विषयों के पक्ष-समर्थन के लिए प्रमाण-स्वरूप यथा स्थान माननीय ग्रन्थों के श्लोकादि भी उद्धृत कर दिए गए हैं और यह कहना अनुचित न होगा कि इन प्रमाणों, श्लोकों आदि से यह संग्रह हितोपदेश और पञ्चतन्त्र की शैली का एक ग्रन्थ बन गया है; फिर भी मनुष्य से भूल होती ही है। अतः पाठकों से प्रार्थना है कि जहाँ कहीं उन्हें कुछ भूल मालूम हो, कृपया उसकी सूचना प्रकाशक को दे दें। उचित होने पर दूसरे संस्करण में उसके शुद्ध करने की चेष्टा की जायगी।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे पूज्य श्रीयुत सत्यनारायणजी पाण्डेय व्याकरणाचार्य्य और परम प्रिय मित्र पण्डित शुकदेव-पाण्डेय से जो सहायता मिली है, उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ। अन्त में इस बात का लिख देना भी मुझे आवश्यक प्रतीत होता है कि यह पुस्तक बरेली-निवासी श्रीयुत बाबू श्यामलालजी

...की प्रेरणा से लिखी गई है, अतएव यह पुस्तक उन्हीं के ...कमलों में सादर समर्पित है। आशा है, वे इसे स्वीकार कर मेरे उत्साह को बढ़ायेंगे। इत्यलम्।

शंकर-सदन,
हिराजपट्टी-मधुवन,
आजमगढ़।

विनीत—
रामजी शर्मा
रामनौमी सं० १९८१

प्रकाशक के दो शब्द

हमें हर्ष है कि प्रस्तुत पुस्तक की अब तक ८००० प्रतियाँ निकल चुकी हैं। अब इसका २००० प्रतियों का चतुर्थ संकरण निकाला जा रहा है। पुस्तक के नवीन संस्करण में अशुद्धियाँ दूर करने की बहुत सावधानी रक्खी गई है। गेट अप जैसा भी है आपके सामने है।

प्रकाशक—
श्यामलाल सत्यदेव,
वैदिक आर्य पुस्तकालय, बरेली.

विषय-सूची

घरेलू विज्ञान

लेखिका—श्रीमती ज्योतिर्मयी ठाकुर

मनुष्य को अपने जीवन की तरह तरह की जरूरतों के लिये प्राय: नित्य ही परेशान होना पड़ता है। इस पुस्तक में इस बात की चेष्टा की गई है कि बँगलों में रहनेवाले सौभाग्यशाली स्त्री-पुरुष तथा देहात में रहनेवाले भाई व बहिन पुस्तक की बातों को नित्य की आवश्यक बातें समझें।

इस पुस्तक में बहुत से ऐसे गुप्त रोगों का वर्णन किया गया है, जिनके कहने में मनुष्य संकोच करता है।

पुस्तक में बताये गये नुसखे उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

बढ़िया ऐंटिक कागज पर मूल्य १)

बढ़िया ग्लेज कागज पर मूल्य ।||≈)

श्यामलाल सत्यदेव,
वैदिक आर्य पुस्तकालय,
बरेली.

दृष्टान्त-सागर

द्वितीय भाग

मङ्गलाचरण

रवि शशि जल थल अनल भुवन नभ-मंडल तारे।
रचे गये हैं विश्व-किन्नरादिक नर सारे॥
करते जो संहार सदा अपनी शक्ती से।
इच्छुक रहते सभी हर तरह जिस भक्ती के॥
उस सर्वमान्य शुभ शक्ति की लीला अपरम्पार है।
प्रथम उसे कर जोरि फिर स्वागत बारम्बार है॥

१—वैराग्य

एक राजा विषय-भोग में ऐसा फँस गया कि उसे राजकाज की कुछ भी चिन्ता न रही। उसका राज-भक्त मंत्री उसके शयनागार के द्वार पर घंटों खड़ा रहता, पर कुछ सुनवाई नहीं होती थी। एक दिन मंत्री ने किसी आवश्यक कार्य से द्वारपाल द्वारा राजा को सूचना दी कि राज का एक अतीव आवश्यक

कार्य आ पड़ा है, कुछ देर के लिए बाहर आकर आप इसके विषय में यथोचित प्रबन्ध कर जायँ। उधर राजा रानियों के साथ चौपड़ में मस्त हो रहे थे, अतएव उन्होंने द्वारपाल द्वारा मंत्री को कुछ देर तक द्वार पर खड़े रहने की आज्ञा दी। मंत्री दिन भर राज की आज्ञानुसार द्वार पर खड़ा रहा, परन्तु राजा ने फिर उसकी खबर न ली। इस घटना से मंत्री को बड़ी ग्लानि हुई। उसने सोचा कि जितनी सेवा मैं इस राजा की करता हूं, यदि उतनी ही सेवा मैं जगत् पिता परमात्मा की करता, तो निःसन्देह ईश्वर मुझ पर सन्तुष्ट होते और मेरी गति बन जाती। ऐसा ही विचारकर मंत्री सब कामों को छोड़ "कोटिन्त्यक्त्वा हरिम्भजेत्" के अनुसार हाथ में तुम्बा लेकर वन में चला गया और तपस्या करने लगा। इधर कुछ दिनों के बाद जब राज-कार्य में गड़बड़ी मचने लगी, तब उस विषयी राजा को अपने मंत्री की आवश्यकता जान पड़ी। जब उसे मंत्री के वैराग्य की सूचना मिली, तब वह आप ही मंत्री को लौटा लाने के लिये जंगल में जाने को तैयार हुआ। यह देख उसकी रानियाँ भी उसके साथ हो लीं। सारांश यह कि राजा सपरिवार अपने सभासदों समेत उस वन में गया और मंत्री की दशा देख पूछा—"हे मित्र! तू एक राजा का मंत्री होकर भी इस प्रकार दीनावस्था में पड़ा है। तुम्हीं कहो, इससे तुम्हें क्या लाभ हुआ?" उत्तर में मंत्री ने कहा—"राजन्! लाभ तो बड़ा भारी हुआ। जहाँ आपके द्वार पर जाने और दरवाजा खटखटाने पर भी मेरी एक सुनवाई न थी, वहाँ दो-चार दिन की ही ईश्वर-भक्ति से मैं इस योग्य हो गया कि आज श्रीमान् सपरिवार इस उजाड़ जङ्गल में मेरे सामने आ खड़े हुए।" मंत्री की इस बात से राजा की आँखें खुल गयीं और

वह भी अपना राज-पाट अपने पुत्र को सौंप मंत्री के साथ जंगल
में तपस्या करने लगा। ठीक है—

जितना प्रेम हराम से उतना हरि से होय।
चला जाय बैकुंठ को बाँह न पकड़े कोय॥

२—साँच को आँच कहाँ?

एक सेठ का युवा लड़का एक स्वरूपवती सेठ की कन्या को
देखकर मोहित हो गया और उससे रति-भिक्षा माँगी। कन्या ने
से कौन[illegible]या कि मेरा ब्याह हो गया है, इसलिये मैं किसी
इसकी नंगा-[illegible] साथ भाग नहीं कर सकती। यह सुनकर सेठ
को दिखा दिया, [illegible]—"अगर तुम मेरी बात नहीं मानतीं, तो मैं
कि थीं ही नहीं? [illegible] प्राण त्याग दूंगा और इसका पाप तुम्हारे
था?" उस ठग ने [illegible]ह सुनकर उस युवती ने कहा—"मैं पति-
महात्माजी अवश्य आ[illegible]ज्ञा के मैं आपके साथ भोग नहीं कर
उस घर में सोये हुए हैं।" [illegible]ती हूं कि जब मैं पति के यहाँ
हों।" ठग ने कहा—"नहीं, भल[illegible] अवश्य तुम्हारे साथ रमण
साधु होकर भला चोरी करेंगे? [illegible] चला गया। उधर जब
को संदेह हो, तो चलकर देख लीजिये।" [illegible] उसने अपने पति से
लोगों को लिये हुए उस महात्मा की [illegible]दि आपकी आज्ञा
किया। बाबाजी यह माजरा देख पीले पड़ [illegible] क्योंकि वह
हुए बोले—"राम-राम!! लो, देख लो; यह तुम्बा[illegible] अच्छी
झोली है।" यह सुनकर उस ठग ने उनको जटा को [illegible]।
दिया। जटा के खुलते ही साठों अशर्फियाँ जमीन पर गिर
पड़ीं। लोग हँसने लगे। बाबाजी को लाचार हो तुम्बा,

आओ।" पति की आज्ञा पाकर वह युवती समस्त सिंगारों
से सुसज्जित हो तथा अमूल्य आभूषणों को पहनकर रात्रि
के समय उस सेठ-कुमार के घर चली। रास्ते में उसे चोर मिले।
चोरों ने चाहा कि उससे आभूषणों को छीन लें, परन्तु उस
स्त्री ने हाथ जोड़कर सारी सच्ची घटना कह सुनाई और बोली—
"आप लोग विश्वास करें और यहीं बैठे रहें। जब मैं वहाँ से
लौटूंगी तो अवश्य अपना सारा गहना तुम्हें दे दूंगी। इस समय
आप लोग मेरा श्रृंगार न बिगाड़ें।" चोरों ने यह बात मान ली
और उसे छोड़ दिया। उधर जब वह युवती उस सेठ के घर पहुंची
और उसे जगाया, तब सेठ चकित हो रहा और उसकी अ
प्रतिज्ञा को देखकर मनही मन बड़ा प्रसन्न हुआ; साथही इ "ट-
से उसके हृदय में ज्ञान का संचार हुआ। उसने वन में
को माता कहकर दंडवत् किया और उसको ा के बाद
आप भी साथ हो लिया। रास्ते में फिर विषयी राजा
नुसार उस स्त्री ने उन्हें अपना सारा गहना जब उसे मंत्री के
पर उसकी अटल प्रतिज्ञा देख चोर भी ही मंत्री को लौटा
माँगकर चले गये। जब उसकी स हुआ। यह देख उसको
मालूम हुआ, तब वह प्रसन्न सारांश यह कि राजा सपरि-
लगा। सच है— स वन में गया और मंत्री की

! तू एक राजा का मंत्री होकर भी
"स मैं पड़ा है। तुम्हीं कहो, इससे तुम्हें
!" उत्तर में मंत्री ने कहा—"राजन्! लाभ
हुआ। जहाँ आपके द्वार पर जाने और दर-
खटाने पर भी मेरी एक सुनवाई न थी, वहाँ दो-चार
की ही ईश्वर-भक्ति से मैं इस योग्य हो गया कि आज
श्रीमान् सपरिवार इस उजाड़ जङ्गल में मेरे सामने आ खड़े
हुए।" मंत्री की इस बात से राजा-की आँखें खुल गयीं और

गिनते हुए देख लिया और सोचा कि किसी तरह इनका धन हड़पना अवश्य चाहिये। ऐसा विचारकर एक दिन उसने बाबाजी को अपने घर भोजन करने को बुलाया। बाबाजी निमंत्रण स्वीकार कर उसके घर जा पहुंचे। ठग ने उनकी बड़ी आवभगत की। बाबाजी भोजन करके वहीं सो रहे। जब बाबाजी सो गये, तब उस ठग ने अपनी स्त्री को मारना शुरू किया। स्त्री की चिल्लाहट सुन पड़ोसवाले दौड़कर आये और इसका भेद पूछने लगे। तब ठग ने कहा—"बात क्या है? साठ अशर्फी अभी लाकर मैंने रक्खा था, पर यह दुष्टा कहती है कि मैं नहीं जानती। भला आप ही लोग कहिये यहाँ से कौन ले जायगा?" लोगों ने कहा- "हां, यह तो ठीक है। इसकी नंगा-झोरी लो।" उस स्त्री ने आप ही अपने सब वस्त्रों को दिखा दिया, पर मुहरें न मिलीं; और मिलतीं भी कैसे जब कि थीं ही नहीं? लोगों ने पूछा—"यहां और तो कोई नहीं आया था?" उस ठग ने जवाब दिया—"नहीं जी, कोई नहीं; एक महात्माजी अवश्य आए हुए हैं, वह भी बेचारे भोजन करके उस घर में सोये हुए हैं।" लोगों ने कहा—"शायद वही लिये हों।" ठग ने कहा—"नहीं, भला कभी ऐसा भी हो सकता है? वे साधु होकर भला चोरी करेंगे? फिर भी यदि आप लोगों को संदेह हो, तो चलकर देख लीजिये।" यह कहकर उस ठग ने लोगों को लिये हुए उस महात्मा की नंगा-झोरी लेना शुरू किया। बाबाजी यह माजरा देख पीले पड़ गये और डरते हुए बोले—"राम-राम!! लो, देख लो; यह तुम्बा है; यह झोली है।" यह सुनकर उस ठग ने उनको जटा को खोल दिया। जटा के खुलते ही साठों अशर्फियाँ जमीन पर गिर पड़ीं। लोग हँसने लगे। बाबाजी को लाचार हो तुम्बा,

झोली लेकर सटकना पड़ा। चलते समय उस ठगने बाबाजी से कहा—"बाबाजी! फिर कभी कृपा करना।" साधु महाराज ने चलते हुए कहा—"बच्चा! न तो अब साठ होंगी, न आना होगा।"

इस घटना से यह शिक्षा मिलती है कि साधुओं को धन संचय करना बुरा है। यथा—

न हि वैराग्यमापन्नो धनार्जनः पराभवेत्।
निष्कपष्टि धनादेवं साधुर्दुःखी यथाऽभवत्॥

४—बहिरा पारवा।

बाधिर्यं दुःखदं लोके महद् दुःख प्रदायकम्।
यथा बधिर वैश्यस्य सकुटुम्ब गृह क्षतिः॥

एक वैश्य अपने बैलों की नई जोड़ी लेकर हल जातन चला। रास्ते में एक ज्योतिपी पंचांग देखकर उसके ग्रह बताते हुए उसको आशीर्वाद देने लगे। बहिर वैश्य ने यह कुछ तो न समझा, बल्कि मन में सोचने लगा कि मालूम होता है कि मेरे बाप ने इनका क़र्ज़ लिया है और ये उसी क़र्ज़ का अपनी बही दिखाकर माँग रहे हैं। इतने में उस ज्योतिप ने आशीष देकर कुछ मांगने को हाथ फैलाया। यह देखकर वैश्यजी बोले—"सेठ जी! मैं नहीं जानता था कि मेरे सिर पर [illegible] क़र्ज़ है। अच्छा इन दोनों बैलों को इस वक्त ले जाइए [illegible] देकर आपसे फारखती करा लूंगा।" ज्योतिषी [illegible] लम्बे हुए। इधर बहिरे महाशय घर पहुंचे। [illegible] ने भोजन लाकर रख दिया। बहिरे महाशय [illegible] से

क्या खायें; बाप तो हमें क़र्ज़ में फँसा गया है। साहूकार अभी आया था और वही दिखाकर बैलों को ले गया है। माँ साहिबा भी बहिरी थीं; बोलीं—"हाँ बेटा! बहू को चलन ठीक नहीं है। वह किसी काम में ध्यान नहीं देती, तभी तो तरकारी में इतना नमक डाल दिया है।" यह कहकर माता बहू को मारने लगी। बहू रोती हुई बोली—"हाय! मैंने किसकी कपास चुराई है? कौन राँड़ कहती है? तू दुनिया के कहने से मुझ से लड़ती है।" इस प्रकार उन तीनों ही की दुर्दशा हुई।

५—नक़ली पतिव्रता।

एक नगर में रामप्रसाद नाम का एक आदमी रहता था। वह अपनी स्त्री को बहुत चाहता था और प्रगट में स्त्री भी पतिप्राणा बनी हुई थी। वह आदमी सर्वदा अपनी स्त्री की प्रशंसा किया करता कि वह पूरी पतिव्रता है। एक दिन पड़ोस के एक बूढ़े ने कहा—"अजी रामप्रसाद! तुम अभी त्रिया-चरित्र से अज्ञान हो, इसीलिये अपनी स्त्री की इतनी बड़ाई करते हो। मेरी समझ में वह पतिव्रता नहीं है।" रामप्रसाद यह सुनकर बहुत बिगड़े और बोले "वाह साहब! आपने भी खूब कहा। मेरी स्त्री सच्ची पतिव्रता है। वह मुझे देखकर ही जीती है। मुझे एक पल भी आँख के ओट नहीं करना चाहती। जब मैं कहीं जाता हूं तो वह अन्न-जल भी छोड़ देती है और जब आता हूं तो पैरों पर गिरकर मेरा सत्कार करती है। मेरे पीछे भोजन करके सोती और पहले ही उठती है। दुनिया में ऐसी पतिव्रता और न होगी।" तब बूढ़े ने कहा—"पर परीक्षा जब तक न हो यह कैसे कहा जा सकता है कि यह पतिव्रता

है।" रामप्रसाद ने पूछा—"तो हम कैसे परीक्षा करें?" बूढ़े महाशय ने कहा—"हम उपाय बतलाते हैं; तुम वैसा ही करो—अपनी स्त्री से कहकर सात-आठ दिन के लिए कहीं जाओ; फिर मार्ग में से ही सन्ध्या होते लौट आओ; फिर साँस रोक-कर मृतक से बन जाना; बस इतने ही से उसके पातिव्रत-धर्म की परीक्षा हो जायगी।"

इस उपदेश को सुनकर रामप्रसाद घर पहुंचे और अपनी स्त्री से ग्राम के लिये सात-आठ दिन की विदा माँगने लगे। स्त्री ने कहा—"प्राणनाथ, मुझे बड़ा कष्ट होगा। सात दिन मेरे लिये सात कल्प हैं, पल-पल कठिन हो जायगा। मुझे आपका वियोग एक क्षण का भी दुखदायी है।" पर रामप्रसाद न माने और आवश्यक काम बताकर चल पड़े। इधर स्त्री ने सोचा—"अच्छा हुआ, जो मुआ ग्राम को चला गया। उसके रहते ठीक नहीं होता था। आज से सात दिन तक खूब गुलछर्रे उड़ेंगे और अपने यार को भी बुलाऊँगी।" यह सोचकर उसने पकवान बनाना शुरु किया और शीघ्र ही लड्डू, मालपुआ और फिन्नी आदि बनाकर एक कुटनी को अपने यार के पास उसको बुलाने के लिए भेजा। यार के आने में विलम्ब हुआ जान, उस स्त्री ने सोचा कि तब तक कुछ जल-पान कर लूं। ऐसा विचारकर उसने किवाड़ बन्द कर दिये, फिर चौके में आसन जमा सामने मोदक आदि रख खाने का विचार करने लगी। इतने में अचानक किसी ने द्वार खटखटाया। उस स्त्री ने समझा कि यार साहब आये और झट जा किवाड़ खोल दिया। किवाड़ खुलते ही उसने देखा कि द्वार पर उसके पति महाशय खड़े हैं। उसने आश्चर्य से पूछा—"अजी, क्या बात है, तबीयत ठीक तो है?" रामप्रसाद ने कहा—"क्या कहूं, जब मैं कुछ दूर

पहुंचा तो मार्ग में एक ज्योतिषी मिले और उन्होंने कहा कि कहाँ जाते हो; आज तुम्हारी मृत्यु का योग है; घर को लौट जाओ। मुझे भी ऐसा ही जान पड़ता है, क्योंकि मेरा शरीर काँप रहा है। तुम कहीं ले चलकर मुझे सुला दो।" स्त्री ने पतिदेव को एक खाट पर सुला दिया। रामप्रसाद सोते ही अपनी साँस को रोक मुर्दा बन गया। हज़रत की इस मक्कारी से स्त्री को मालूम हो गया कि अब ये इस लोक में नहीं हैं। पर साथ ही उसने वह भी ख्याल किया कि ये तो मर ही गये; अब जी तो सकते नहीं; इसलिये पहिले कुछ खा पी लूं; क्योंकि इनको बड़े परिश्रम से तैयार किया है और भूखे में रोना भी ठीक न होगा। ऐसा विचारकर उसने भर पेट ख़ूब अच्छे-अच्छे पकवानों को उड़ाया। खाते-खाते उसे सराहती भी जाती थी; जैसे—वाह लड्डू तो ख़ूब बने हैं, फिन्नी का भी क्या पूछना और मालपुए के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं। चित्त में आता सभी खा लूं, परन्तु कोई चिन्ता नहीं, एकादशी तक ख़ूब मजे में उड़ेंगे। निदान जब खा चुकी तो किंवाड़ खोले, चीख मारकर छाती पीटने और रोने लगी। रोते समय छाती पीट-पीटकर कहने लगी—"सांई सरग सिधारियाँ कुछ मैं नू भी भक्खो।" इस गुल-गपाड़े को सुनकर सभी महल्लेवाले आ जमा हुए और रामप्रसाद को मृत-अवस्था में देखकर आँसू बहाने लगे। कोई कहता था—हाय! बड़ा अच्छा आदमी था। कोई कहता—भाई जो हुआ सो हुआ; अब इसकी क्रिया होनी चाहिये। निदान, पड़ोसियों ने अरथी सजाई और 'राम राम सत्य है' कहते हुए उन हज़रत को जलाने के लिये स्मशान को चले। उस स्त्री ने फिर कहा—"सांई स्वर्ग सिधारियाँ कुछ मैं नू भी भक्खो।" तब तो उन हज़रत से रहा न गया और अरथी

पर लेटे ही लेटे बोले—"खीर सड़ासड़ खाइयाँ और लड्डू भी चक्खो।" लोग विस्मित हो गये और अरथी को उतारकर बोले—"यह क्या माजरा है?" रामप्रसाद उठ बैठे और लोगों को इस त्रिया-चरित्र की कथा सुनाने लगे। पड़ोसी सुनकर बोले—"हां भाई! आज-कल की पतिव्रताएँ ऐसी ही हुआ करती हैं—

तिया-चरित जानै ना कोय।
पती मार कै सत्ती होय॥

शास्त्र में भी लिखा है—

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशय॥

६—लाला की चतुराई

एक राजा ने अपने मंत्री से पूछा कि चारों वर्णों में कौन अधिक चतुर होता है? मंत्री ने कहा—"राजन्! लाला (वैश्य) विशेष चतुर होते हैं। तब राजा ने कहा कि इस बात की परीक्षा ली जायगी। संयोग से राजा हवा खाने के लिये एक दिन किसी लाला के द्वार से होकर जा रहे थे। घर में ललाइन लाला से कह रही थीं कि अब तो निर्वाह होने की कोई सूरत नजर नहीं आती। लाला ने कहा—"प्रिये! धैर्य धरो, नौकरी लगते ही मैं रुपयों से घर भर दूंगा।" राजा इस वार्तालाप को सुनकर बड़े आश्चर्य में आ गये और इस बात की परीक्षा के लिये दूसरे दिन लाला को दर्बार में बुलाकर बोले—"लालाजी, आप नौकरी करेंगे?"

लाला ने कहा—"हाँ।" राजा ने पूछा - "कितनी तनख्वाह लीजियेगा?" लाला ने कहा—"महाराज! मुझे तनख्वाह की उतनी चिन्ता नहीं है, आप मुझे कुछ भी न दें, परन्तु नौकर अवश्य रख लें।" राजा और आश्चर्य में आ गये और लाला को बिना तनख्वाह के नौकर रख लिया। लाला मूछों पर ताव देते हुए बोले—"राजन्! अब मुझे कोई चिन्ता नहीं है। रुपयों का तो मैं बात की बात में ढेर लगा दूंगा; परन्तु आप मुझे कोई काम दें।" राजा ने उनको अस्तबल की निगरानी का हुक्म दिया।

दूसरे दिन लाला अस्तबल में पहुंचे और घोड़ों की लीद उठा-उठाकर सूंघने लगे। यह देख साईस डरे और हाथ जोड़कर लाला से बोले—"लाला साहब, आप यह क्या कर रहे हैं?" लाला बोले—"कुछ नहीं, यही देख रहा हूं कि घोड़ों को ठीक-ठीक दाना-घास दिया जाता है या नहीं। आज राजा के यहाँ रिपोर्ट करनी है।" यह सुनकर वे सब घबड़ा गये और हजारों की भेंट लाला को नित्य प्रति देने लगे। एक महीने के बाद राजा ने लाला को बुलाकर पूछा कि आपने कितना रुपया पैदा किया? लाला ने कहा—"जहाँपनाह! पचास हजार रुपये" राजा बड़े आश्चर्य में आ गये और लाला को वहां से हटाकर नक्षत्रों के गिनने के काम पर नियत किया।

लाला तारे गिनने लगे। वे बड़े-बड़े सेठों के पास जाकर कहते कि तुम्हें अपनी कोठी गिरा देनी पड़ेगी; क्योंकि इससे मेरे काम में रुकावट पड़ती है। बेचारे सेठ हजार दो हजार देकर अपना पीछा छुड़ाते। इस भांति भी एक महीना बीत गया। राजा ने पूछा—"इस महीने में आपने कितना कमाया?"

लाला बोले—"लाख रुपये।" दूसरे दिन राजा ने लाला को आज्ञा दी कि तुम नदी के तट पर बैठकर उसकी लहरें गिना करो। आज्ञा पाते ही लाला बस्ता लेकर नदी के किनारे जा डटे और जो जहाज़ अथवा नाव आती उसी को रोक देते और कहते कि ठहरो, जब हम लहरों को गिन लें तब ले जाना। बेचारे व्यापारी जहाजों के रुकने से अपनी हानि समझ, हज़ारों रुपये लाला को दे देते। इस प्रकार से लाला ने इस महीने में दो लाख रुपये पैदा किये। अब राजा ने सोचा कि इन्हें ऐसा काम देना चाहिये कि जिसमें किसी तरह की आमदनी न हो सके। राजा ने १०० मन मोतीचूर के लड्डू बनवाकर एक घर में रख दिये और लालाजी को देख-रेख करने के लिये मुक़र्रर किया। लालाजी ने इसे भी ग़नीमत समझा। वे नित्य लड्डुओं को इधर-उधर बदलने लगे। अदलने-बदलने में जो चूरा झड़ता उसे अपने घर भेजवा देते। महीने के अन्त में राजा ने लाला से पूछा कि इस महीने में आप को कितनी आमदनी हुई? लाला बोले—"हुजूर दो सौ रुपये।" यह सुनकर राजा ने कहा—"अब मैं आपको नौकर नहीं रख सकता।" लालाजी बोले—धर्मावतार! ऐसा ही कीजिये, पर दर्बार के समय एक मिनट मुझ से एकान्त में बातकर लीजिये। इसके बदले मैं आपसे कुछ न लूंगा; बल्कि उलटे पांच हज़ार रुपये नित्य सेवार्पण करता रहूंगा।" राजा ने स्वीकार कर लिया। वे नित्य दर्बार के समय एक मिनट लाला-जी से एकान्त में मिलते और पांच हज़ार रुपये उनसे वसूल करते। कुछ दिन बाद राजा ने लाला से कहा—"तुम्हें इससे क्या लाभ होता है, जो पाँच हज़ार नित्य ख़र्च करते हो।" लाला बोले—"महाराज! ठीक है, परन्तु इसी की बदौलत आजकल

मुझे लाख रुपये रोजाना की आमदनी होती है।" राजा चौंक कर बोले—"वह कैसे ?" उत्तर में लाला ने कहा—"आपके दर्बारियों से आपके रुष्ट होने की बात कहता हूं, तो वे मुझे रिश्वत देकर आपको प्रसन्न करने की चेष्टा करते हैं। इसी से मुझे आजकल लाख रुपये प्रति दिन की आमदनी होती है।" राजा यह सुनकर बहुत बिगड़े और उनका सारा धन छीन-कर उन्हें राज से बाहर निकाल दिया। उधर रास्ते में लाला को कुछ भिखमंगे ब्राह्मण मिले, लाला ने उनसे कहा—"अजी भीख मांगने म तुम्हें कुछ लाभ नहीं है, इसी लिये तुम लोग मेरे यहां नौकरी कर लो। बेचारे ब्राह्मण लाला की पट्टी में आ गये और दस रुपये महीने पर नौकर हो गये। नित्य दिन भर भीख माँगते और शाम को लालाजी के यहाँ जमा कर देते और महीने भर बाद १०) ले संतोष से जीवन बिताते। इधर लाला की आमदनी का हिसाब न रहा। जब यह समा-चार राजा को मालूम हुआ, तब वे बहुत प्रसन्न हुए और लाला की चतुरता की बड़ाई करने लगे। फिर उनको बुलाकर अपना मंत्री बना लिया।

७–सवासेर

"हिम्मते मरदाँ मददे ख़ुदा"

मनुष्य हिम्मत से अपने बड़े से बड़े शत्रुओं को भी सहज ही में परास्त कर सकता है। इसी विषय में एक दृष्टान्त है। किसी बन में एक शेर रहता था। वह नित्य जंगली पशुओं को मारकर खा जाता था। सभी जीव तंग आ गये। 'हिम्मते

"मरदाँ मददे ख़ुदा" इस कहावत पर विश्वास करके एक लोमड़ी इस बात पर तैयार हो गई कि किसी प्रकार शेर को जंगल से निकाल दें। निदान वह किसी रंगरेज के कूंड़े में लोट और अपनी अद्भुत शक्ल बना उस सिंह की माँद में जा बैठी। कुछ देर के बाद शेर आया और उसे द्वार पर बैठे देखकर पूछा—"तू कौन है?" लोमड़ी ने उत्तर दिया—"सवा सेर।" यह सुनकर शेर डर गया और यह सोचा कि मैं तो शेर ही हूं, पर यह तो सवा सेर है; इसलिये यहाँ से भाग जाना ही उचित है। ऐसा विचारकर शेर भागने लगा। वृक्ष पर बैठा हुआ एक बन्दर यह देख रहा था। उसने शेर से कहा—"अजी क्यों भागे जाते हो? यह तो लोमड़ी है।" सिंह ने कहा—"नहीं, सवा सेर है।" यह सुनकर बन्दर हंसा और बोला—"अगर आप डरते हैं, तो मेरी पूंछ पकड़कर मेरे पीछे-पीछे चलिये। मैं वहाँ चलकर तुम्हें इसका भेद बता दूंगा।" शेर ने स्वीकार कर लिया और बन्दर की दुम पकड़कर चला। जब वे लोग पास पहुँचे, तो चतुर लोमड़ी ने हंसकर कहा—"ठीक है; बन्दर बड़े चालाक हुआ करते हैं। यह देखो, मेरे फिरे हुए शिकार को लौटाए ला रहा है।" इस बात को सुनकर शेर ने समझा कि बन्दर मुझे धोका देता है। ऐसा विचारकर उसने बन्दर की पूंछ उखाड़ ली और उस जंगल से भाग निकला। फिर कभी उस वन में जाने का नाम तक न लिया। तब से उस जंगल के जीव आनन्द से रहने लगे। ठीक है—

त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽत्र काले धैर्यात्कदाचित् स्थितिमाप्नुयात्सः।
यथा समुद्रेऽपि च पोत भंगो सांयत्रिको वाञ्छेत तुर्तमेव॥

८—स्त्री की बुद्धिमत्ता

किसी नगर में एक धनी कृपण सेठ रहते थे। घर में केवल उनकी स्त्री थी। एक रात्रि को उनके घर डाकुओं ने डाका डाला। डाकू, यह विचारकर कि सेठ को मारकर धन आदि ले चम्पत हो जायं, सेठ को मारने लगे। यह देख उनकी चतुर स्त्री ने डाकुओं से हाथ जोड़कर कहा,—"आप लोग इनको न मारें। मैं स्वयं अपना तहखाना दिखाये देती हूं।" डाकुओं ने स्वीकार कर लिया और उस स्त्री के पीछे-पीछे चलने लगे। सेठानी ने इनको तहखाने में उतारकर कहा—"लीजिये, यही तहखाना है। चोरों की बन आई। वे प्रसन्न होकर बोले—"तो इनकी तालियाँ कहाँ हैं?" सेठानी ने कहा—"ऊपर ही छुट गई हैं। मैं अभी जाकर ल आती हूं।" चोरों ने कहा—"हाँ, हाँ, जल्दी से ल आओ।" यह सुनकर सेठानीजी बाहर आईं और ऊपर से तहखाने का फाटक बन्द कर पुलिस को सूचना दे दी। बात की बात में सूचना पाते ही पुलिस के सिपाही आ धमके और चोरों को पकड़ कारागार में बन्द कर दिया। सच है, बुद्धि से सारे कार्य सिद्ध होते हैं—

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धिस्तु कुतो बलम्।

९—कृपण सेठ

कथामृतं ह्यपि विषवत् प्रतीयते,

दुर्बुद्धे हरिर्विमुखान्तरात्मनः।

गतः कथां कथमपि जायर्यादितः,

सुष्वाप स्वादितवान पतच्छ्मूत्रम् ॥

एक नगर में कथा हो रही थी। गांव के सब लोग उसे सुनने जाया करते थे। किन्तु एक मक्खीचूस बनिया द्रव्य चढ़ाने के डर से नहीं जाता था। उसकी स्त्री बहुत समझाती, पर वह एक न मानता और कहता कि वहाँ जाने से कुछ चढ़ाना पड़ेगा और यहाँ दूकान पर रहने से कुछ न कुछ लाभ ही होगा।" उसकी स्त्री ने कहा—"अजी, कथा में अमृत बरसता है। एक दिन जाकर देख तो आओ।" स्त्री के बहुत कहने सुनने पर बनिया उस दिन रामकथा में पहुँचे और एक कोने में बैठ रहे। इतने में उनको नींद लग गई। इसी अवसर में एक कुत्ता आया और टाँग उठाकर उसके मुँह में मूत दिया। अब क्या था। बनियाराम उठे और चिल्लाकर कहने लगे—"अजी, यह तो खारा है।" इस पर बड़ी हंसी हुई। लोगों ने कहा—"अजी तुम सो गये हो, इसीलिये तुम्हें अमृत खारा मालूम पड़ता है।" सेठजी भी सोचे कि ठीक हो सकता है—"जो सोवे सो खोवे। अच्छा आज रात भर जागता ही रहूंगा।" ऐसा विचारकर दूसरे दिन फिर सेठजी कथा सुनने गये; किन्तु रोज के अभ्यास से आज भी नींद आ गई। आज पंडितजी की चौकी के पास ही बैठे हुए थे। सोते-सोते उन्होंने स्वप्न में देखा कि उनकी दूकान पर गाहक आये हुए हैं और आप कपड़ा बेंच रहे हैं। आप कहते हैं, कितने गज चाहिये। ग्राहक ने कहा—"दस गज दे दो।" अब क्या था, सेठजी के हाथ में पंडितजी का फेटा था। एक, दो, तीन करके गिनना शुरू किया और दस करके फाड़ डाला और कहा—"लो, दस गज ही सही।" पंडितजी बोले—"अरे मूर्ख! यह क्या

किया जी मेरा फेटा फाड़ डाला । यहाँ कथा सुनने आया है या कपड़ा बेचने ?" सेठजी की नींद उचटी और आप बोले—"महाराज ! क्या करूं, मुझे नींद आ गई ।" खैर कथा समाप्त होने पर आप घर पहुँचे और स्त्री से बिगड़कर बोले—"मैं तुझ से पहिले ही कहता था कि मुझे कथा सुनने मत भेज । १०) का और नुक़सान हुआ । पंडितजी का फेटा फट गया है । उसे नया बनवाना पड़ेगा ।"

कृपणेन समो दाता न भूतो न भविष्यति ।
स्पृशन्नेव विना याति परेभ्यो न प्रयच्छति ।
रहे न कौड़ी - पाप की, ज्यों आवे त्यों जाय ।
लाखन को धन पाय के, मरे न कफ्फन पाय ।।

एक दिन सेठजी ने अपने लड़के को कथा सुनने के लिये भेजा । उस दिन कथा में यह निकला कि अगर गौ खाती हो तो उसे हांकना पाप है । दूसरे दिन सेठ का लड़का ही दूकान पर था । अनायास एक गाय आकर उसके चावल खाने लगी, लेकिन लड़के ने न हाँका । इतने ही में सेठ भी वहाँ आ पहुँचे और गौ को खाती देख अपने लड़के को भला-बुरा कहने लगे । लड़के ने कहा—"आप ही ने तो कथा सुनने को भेजा था । वहाँ यह बात निकली थी कि खाती हुई गौ को न हांके ।" यह सुनते ही सेठजी आग-बबूला हो गये और बोले—"अरे मूर्ख, अगर हम ऐसी कथा सुनते, तो घर आज तक न रहता ? अरे बेवकूफ़, जब कथा सुनने गये, तो चद्दर बिछा दिया और चलने लगे तो वहीं झाड़ दिया कि पंडितजी, लो यह अपनी कथा ।"

मुक्ता फलैः किं मृग पक्षिणांच मिष्ठान्न पानं किमु गर्दभानाम् ।
अन्धाय दीपो वधिरस्य मानं मूर्खेभ्य किं शास्त्रकथाप्रसंगः ॥

१०—बूदूधू नौकर

एक क़ाज़ी साहब के पास एक नौकर था, जिसका नाम बुद्धू था। वह क़ायदा-क़ानून कुछ भी नहीं जानता था। घर पर मनुष्यों के आने पर उनके सामने हक्का-बक्का सा खड़ा हो जाता था। एक दिन क़ाज़ी साहब घुड़ककर बोले—"फिर कभी किसीको सलाम न करेगा तो ख़ूब पीटूंगा।" बुद्धू अब सबको सलाम करने लगा। रास्ते में जो मिलता बुद्धू सबको सलाम करता। एक दिन एक धोबी गदहा लिये चला आ रहा था। नौकर ने धोबी को सलाम किया फिर गदहे को भी। यह देख धोबी हंसा और बोला—"इसको सलाम नहीं किया जाता, बल्कि हेई-हेई करके चलाया जाता है।" बुद्धू आगे बढ़ा। वहाँ देखता क्या है कि एक शिकारी जाल फैलाये बैठा हुआ है और अनेकों चिड़ियां इधर उधर उड़ रही हैं। यह देख वह हेई-हेई करके चिल्लाने लगा, जिससे जाल के पास से चिड़ियां उड़ गयीं। अब तो शिकारी बड़ा क्रोधित हुआ और उसने बुद्धू को ख़ूब पीटा।

एक दिन किसी रईस के यहाँ क़ाज़ी साहब की दावत थी। बुद्धू भी साथ गया। खाते-खाते निमंत्रण देनेवाले महाशय की दाढ़ी में एक चावल अटक गया। उसे देख उनका नौकर, जो बड़ा चालाक था, धीरे-धीरे गुनगुनाने लगा—"फूल के नीचे बुलबुल का एक बच्चा है, उसे उड़ा दो।" यह सुनकर रईस ने दाढ़ी में लगा हुआ भात गिरा दिया। घर आने पर क़ाज़ी

साहब ने बुद्धू से कहा—"देख, कैसा फ़ायदा है। कभी हमारी दाढ़ी में भी भात लग जाय तो इशारे से समझा देना।" एक दिन क़ाजी साहब के घर में भोज था और क़ाजी साहब ने अपने नौकर की करामात दिखाने के लिये एक भात अपनी दाढ़ी में लगा लिया और आँख मारकर नौकर की तरफ़ इशारा किया। बुद्धू उसी समय ख़ूब चिल्लाकर कहने लगा—"उस दिन जो उस मकान में हुआ वही आपकी दाढ़ी में हुआ।" ऐसा कहकर 'आँ, आँ' करके गाने लगा। यह तमाशा देख सभी लोग हंस पड़े।

एक दिन क़ाजी साहब ने कहा—"तुम ख़राब रसोई करते हो, अभी तक तुम्हें भात का मांड़ निकालना नहीं आया। आज जब भात बनाने लगना तो हमको दिखला लेना।" उस दिन बुद्धू भात चुर जाने पर अपने मालिक को बुलाने गया। दरवाज़े के भीतर से झांककर उंगली से इशारा करने लगा। क़ाजी साहब दरवाज़े की ओर पीठ किये कुछ लिख रहे थे। इस लिये उनको कुछ मालूम नहीं हुआ। नौकर घंटों इसी तरह संकेत से बुलाता रहा, फिर अंत में क्रोध से बोला—"कब तक इसी प्रकार बुलाते रहें, इधर सब भात जल रहा है।" क़ाजी साहब ने जो पीठ फेरकर देखा कि नौकर इशारे से बुला रहा है, तुरन्त उठकर गये। परन्तु वहाँ तो भात जलकर राख हो चुका था। तब तो बुद्धू का मुक्के-लात से ख़ूब सत्कार हुआ।

एक दिन रात्रि में "क़ाजी साहब के घर चोर घुसे। बुद्धू खटपट का शब्द सुनकर बोला—"कौन है?" चोर गम्भीर स्वर से बोले—"कोई नहीं!" यह सुनकर बुद्धू निधड़क सोने लगा। प्रातःकाल क़ाजी साहब ने उठकर देखा तो चोरी हो गई थी। बुद्धू से पूछने पर जब रात का हाल मालूम हुआ तब

उसे गाली देने लगे। बुद्धू मुंह बनाकर बोला—"हम क्या करें? वह तो कहता था, 'कोई नहीं, कोई नहीं।' वह चोर ही नहीं बल्कि झूठा भी था।

एक दिन क़ाज़ी साहब को बाहर जाना था। वह जाते समय बोले—"देखना, दरवाज़े पर ख़ूब ख्याल रखना और दरवाज़ा छोड़कर कहीं न जाना। यदि जाओगे, तो चोर हमारा सब कुछ ले जायंगे।" क़ाज़ी साहब तो चले गये। उधर बेचारा बुद्धू लाठी लेकर दरवाज़े पर पहरा देने लगा। एक दिन बीत गया, दो दिन बीत गये, तीसरे दिन उसने सुना कि एक जगह अच्छा तमाशा हो रहा है। झट दरवाज़े को कन्धे पर रख तमाशा देखने चला गया। चोरों ने घर में घुसकर जो हाल किया वह कहने लायक़ नहीं। क़ाज़ी साहब ने आकर देखा तो सन्दूक़ और अलमारी ख़ाली पड़ी है। उधर बुद्धू ख़ूब तमाशा भी देख रहा है और दरवाज़े का पहरा भी दे रहा है।

११—तक़दीर से तदबीर

दैवोऽनुकूले तु द्रव्यं किंचितो बहु जायते।
मूसा साहो बहु द्रव्यं मलभन्मृतमूषकात्॥

यदि ईश्वर अनुकूल हो, तो मामूली वस्तुओं से भी अपार धन प्राप्त हो जाता है। जैसे—

एक दरिद्र वैश्य ने किसी धनी मनुष्य से कहा—"यदि आप मुझे कुछ धन दें तो मैं रोज़गार करूं।" धनी ने हंसी से एक मरे चूहे को दिखला दिया और कहा—"जाओ, इसी से व्यापार करो।" उस दरिद्र ने उस मरे हुए चूहे को उठा

और व्यापार के लिये विदेश चला। रास्ते में एक बनिये ने अपनी बिल्ली के लिये उसे एक मुट्ठी चने पर खरीद लिया। दरिद्री बेचारा उन चनों को भुनवाकर और पानी के घड़े को लेकर शहर के बाहर एक वृक्ष के नीचे कुएँ पर जा बैठा। वहां जितने लकड़हारे बोझ लिये हुए शहर में बेचने आते, यह बेचारा उनको थोड़े से चने और ठंडा जल दे शान्त करता। इसके बदले वे भी दो-दो छोटी-छोटी लकड़ियां उसको दे देते। सन्ध्या समय उस दरिद्री ने उन लकड़ियों को बाजार में बेचकर फिर चने लिये और उसी तरह उनको पानी पिलाने लगा। कुछ ही दिन बाद उसके पास बहुत सा धन इकट्ठा हो गया। इसके बाद उसने तीन दिन तक कुछ लकड़ियाँ आप खरीदीं। संयोग से उन दिनों पानी के बरसने से लकड़ियां बहुत महँगी बिकीं। फिर बाजार में आकर वह एक दूकान खोल व्यापार करने लगा। इस प्रकार व्यापार करते-करते कुछ ही दिनों में वह बड़ा भारी धनवान हो गया। तब वह सोने का एक चूहा बनवाकर उस महाजन को देने गया। वह महाजन उसकी कार्य-चतुरता पर बहुत प्रसन्न हुआ और अपनी पुत्री का उसके साथ ब्याह कर दिया। सच है—

"व्यापारे वसति लक्ष्मीः"

१२—अत्र कः सन्देहः

किसी काम को शीघ्रता से बिना परिणाम विचारे नहीं करना चाहिये। क्योंकि, इससे बहुत हानि होती है। जैसे—एक ब्राह्मण के पास एक तोता था। उसने उसको परिश्रम करके "अत्र कः सन्देहः (इसमें क्या शक है)" यह पढ़ाया।

जब तोते को यह कंठ हो गया तो ब्राह्मण उसे लेकर बेचने को निकला। एक सेठ ने पूछा—"इसका कितना मूल्य है ?" ब्राह्मण बोले—"लाख रुपये।" तब सेठजी ने पूछा—"इसमें क्या गुण है ?" ब्राह्मण ने कहा—"यह मेरा तोता भूत, वर्तमान और भविष्यत का जाननेवाला महा विद्वान् पंडित है।" सेठजी ने तोते से पूछा—"क्या महाराज का कहना ठीक है।" तोता बोला—"अत्र कः सन्देहः" अब तो सेठजी को विश्वास हो गया कि अवश्य यह तो महा पंडित है। अतएव उसने झट लाख रुपये ब्राह्मण को दे तोते को खरीद लिया और घर ले जाकर उससे पूछा—"दाना खायेगा, पानी पियेगा ?" तोते ने कहा—"अत्र कः सन्देहः" फिर सेठ के जितने प्रश्न हुए उनके उत्तर में तोते ने "अत्र कः सन्देहः, अत्र कः सन्देहः" कहना आरम्भ किया। तब तो सेठजी चक्कर में आ गये और बोले—"बस तुम्हें यही आता है ?" तोते ने कहा—"अत्र कः सन्देहः" सेठ ने फिर पूछा—"तो क्या हम ठगे गये और हमारे लाख रुपये मिट्टी में मिल गये ?" तोते ने फिर उत्तर दिया—"अत्र कः सन्देहः।" तब तो सेठजी को अत्र कः सन्देहः का मामला अच्छी तरह समझ में आ गया और सिर पकड़कर पछताने लगे। ठीक है—बिना बिचारे शीघ्रता करना ठीक नहीं है। शास्त्र में भी लिखा है—

सहसा विदधीत न क्रियाम विवेकः स्वयमापदांपदम्।
वृणुतेहि विमृश्य कारिणं गुण लुब्धाः स्वमेवसम्पदः॥

१३—चार यार

एक बार शेख़, सैयद, मुग़ल और पठान, ये चारो यार परदेश चले। रास्ते में एक बाग़ में ठहरे और खिचड़ी बनाकर खाने लगे। चारों ओर चारो यार बैठे, बीच में खिचड़ी का पात्र रक्खा गया और उस खिचड़ी के बीचो बीच घी डाला गया था। खाते-खाते पठान एक अंगुली से घी अपनी ओर खींचकर बोला—"यारो! हमारे ख़ानदान में एक बादशाहत हुई है।" यह सुनकर सैयद साहब दो अँगुलियों से घी खींचकर बोले—"हमारे ख़ानदान में दो बादशाहतें हुई हैं।" भला मुग़ल कब चूकनेवाले थे? उन्होंने तीन अँगुलियों से खींचकर कहा—"हां, हमारे ख़ानदान में भी तीन बादशाहतें हुई हैं।" यह देख शेख़जी जल गये और सारी खिचड़ी को मिलाकर बोले—"भाई, हमारे राज में तो सदा घोलमट्ठा ही रहा है।" यह सुनकर चारों यार हँस पड़े। ठीक है चालाकों के आगे चालाकी काम नहीं करती।

१४—आजकल का दर्बार

एक राजा के यहाँ नाच की ठहरी, जिसमें बड़ी तैयारी की गई। जब दर्बार लगा, तो बन्नूजान नाचने आईं और सहज ही में दो घड़ी ताल टप्पे सुनाकर डेढ़सौ रुपये इनाम के सीधे किये। वहाँ बहुत देर से गंगाधर पुरोहित भी मंत्र पढ़-पढ़कर आशीर्वाद दे रहे थे। जब बहुत समय बीत गया तब राजा साहब बोले—"अजी, इसे एकरुपया देकर भगा दो। नालायक़ कहीं का, न मालूम कब से सिर खाये जाता है।" फिर तो गंगाधर दर्बार की यह दशा देखकर बोले—

अच्छी कीनी आपने, रक्खी कुल की टेक।
रंडी पावे डेढ़ सौ, गङ्गाधर को, एक।
तब के नृप वे रहे, रीझे पर कछु देयँ।
अब के तो ऐसे बने, रीझे औ लिख लेयं॥

ठीक है, गंगाधर की यह दशा चारों ओर है, तभी तो भारत की ऐसी दुर्दशा हो रही है।

अर्थे किंचित्प्रदीयेतऽनर्थे च बहु दीयते।
गणिकायै शतं मुद्रास्त्वेका गंगाधराय च॥

वे लोग यह नहीं जानते कि मनुष्य का एक धर्म ही अन्त तक साथ देता है। जिस मनुष्य में धर्म की रुचि नहीं है वह पशुओं से भी नीच है।

आहार निद्रा भय मैथुनं च, समानमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मोहि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिःसमाना॥

१५—ठठेरे-ठठेरे बदलौवल

एक नगर में बुद्धू नाम का एक अहीर रहता था। एक दिन वह एक घड़े में गोबर रख तथा ऊपर से कुछ घी रखकर बेचने को चला। दूसरे नगर में जाकर सुद्धू नाम के एक सुनार के हाथ १०) में बेंचकर घर आया। उधर सुनार ने जब देखा कि बुद्धू हमको ठग गया है तो झट उसने एक पीतल की नथ बनाई और बुद्धू के घर जाकर उसकी स्त्री के हाथ २५) में बेंच दी। जब शाम को बुद्धू घर आया, तब उसकी स्त्री ने वह नथ दिखाकर कहा—"इसे हमने २५) में एक सुनार से खरीदा

है।" बुद्धू ने जब देखा कि नथ पीतल की है, तब वह ताड़ गया कि हो न हो, सुनार ने अपना बदला निकाल लिया। परन्तु इसमें बुद्धू को १५) रु० का नुक़सान था, इसलिये उसने फिर सुद्धू सुनार को ठगने का विचार किया। एक दिन वह सुनार के घर गया। सुनार ने उसका खूब सत्कार किया और बड़े प्रेम से उसके लिये भोजन तैयार करके सोने की थाली में खाने को दिया। बुद्धू ने खाते-खाते सोचा कि किसी तरह इस थाली ही को झटकना चाहिये। पर सुनार भी सुनार ही था। उससे बुद्धू के चित्त की बात छिपी न रही। उसने द्वार पर बुद्धू को सुला दिया। जिस स्थान पर वह स्वयं सोता था ठीक उसीके ऊपर एक रस्सी के छींके पर उस थाली को रख दिया। फिर उसको पानी से इस विचार से भर दिया कि जब बुद्धू उसे उतारेगा, पानी हमारे ऊपर गिर जायगा, जिससे मैं जाग जाऊँगा। 'ठग जाने ठग ही की माया' के अनुसार जब सुनारराम सो गये, तो बुद्धू उठा और एक बर्तन में राख लेकर सुनारराम की चारपाई के पास खड़ा हो गया और धीरे-धीरे उस थाली में डालने लगा जिससे उस थाली का पानी सूखने लगा। कुछ ही देर में थाली का कुल जल राख के कारण सूख गया। फिर क्या था, बुद्धू ने उसे उठाकर एक समीप के गड़हे में गाड़ दिया और आप अपने स्थान पर सो रहा। उधर जब सुनार की नींद टूटी, तो थाली दिखाई न दी। वह भी पक्का ठग था, इसलिये समझ गया कि यह बुद्धू की ही कार्रवाई है। अतः उसने बुद्धू के पास जाकर देखा कि उसका सारा शरीर पानी से भीगा हुआ है। इससे उसकी समझ में यह बात आ गई कि हो न हो थाली इस गड़हे के जल में ही गड़ी हुई है। ऐसा विचारकर वह उस गड़हे में कूदा और थाली को निकाल लाया। दूसरे दिन उसने

फिर उसी थाली में बुद्धू को खिलाया। जब बुद्धू ने थाली देखी, तो कटकर रह गया; पर कर क्या सकता था। अन्त में उन दोनों में यह राय ठहरी कि विदेश चलकर ठग-विद्या द्वारा धन कमाया जाय। निदान दोनों चले। एक नगर में जाकर रहने लगे। दूसरे दिन वहाँ एक बड़ा भारी सेठ मर गया। वे दोनों वहाँ गये और मित्र-मित्र कहकर रोने लगे। लोगों ने धीरज दिया। अन्त में बुद्धू ने कहा—"वाह! सेठजी मर गये। मेरी १०० अशर्फियाँ भी गयीं।" लोगों ने कहा—"कैसी?" बुद्धू बोले—"अमुक समय सेठजी ने हमसे १०० अशर्फियाँ उधार ली थीं, सो अब उनके मर जाने पर कौन देगा?" सेठजी के पुत्र ने कहा—"कोई लिखा-पढ़ी है?" बुद्धू बोले—"यदि लिखा-पढ़ी ही हुई होती, तो चिन्ता की क्या बात थी?" सेठ-पुत्र ने कहा—"मेरे यहाँ तो लिखा-पढ़ी ही का व्योहार है; इसलिये बिना किसी प्रमाण के मैं नहीं दे सकता।" फिर तो उन दोनों ने विचारकर कहा—"अच्छा भाई! अगर तुम्हारे बाप पुकारकर कह दें, तो दोगे?" सेठ के लड़के ने कहा—"क्यों नहीं।" तब तो सुनार ने बुद्धू को सिखा-पढ़ाकर स्मशान में एक गढ़ा खोद उसमें यत्न से बंद कर दिया और आप सेठजी के बेटे से बोला—"आप लोग चलें और अपने बाप की मृतात्मा से पूछ लें।" निदान सब लोग स्मशान में गये। सेठ के बेटे ने हाथ जोड़कर पूछा—"बापजी! इन्होंने आपको सौ अशर्फी दी थीं?" यह सुनते ही भीतर से बुद्धू बोला—"हाँ बेटा! मैंने बड़े गाढ़े समय में इनसे सौ अशर्फी उधार ली थीं, सो तुम इनको मय सूद के हिसाब करके चुका दो, नहीं तो मुझे नर्क में रहना पड़ेगा।" यह सुनकर उस सेठ के भोले-भाले लड़के ने मय सूद के एक सौ पचास मुहरें दे दीं। जब सुनार को अशर्फियाँ मिल गयीं, तो

उसने सोचा कि अब बुद्धू को निकालने का क्या काम है? ऐसा विचारकर वह बुद्धू को वहीं गड़हे में छोड़ आप अशर्फियां ले नौ दो ग्यारह हुआ। कुछ देर बाद बुद्धू भी गड़हे से मिट्टी हटाकर बाहर निकल आया और सुनार का पीछा किया। जब दोनों की भेंट हुई, तो इस विचार से कि अशर्फियाँ दोनों को मिलें, वे दोनों एक होटल में गये और अशर्फियाँ वहीं बनिये के यहाँ अमानत रख भोजन बनाने लगे। सुनार भोजन बना रहा था। उसने बुद्धू को नमक लाने के लिये बनिये के पास भेजा। बुद्धू वहाँ जाकर बनिये से अशर्फियाँ माँगने लगा। बनिये ने कहा—"अकेले तुमको कैसे दूँ ?" तब बुद्धू ने वहीं से पुकारकर सुनार से कहा—"भाई यह तो नहीं देता।" उत्तर में सुनार ने बनिये से कहा—"दे दो।" अब क्या था, बुद्धू ने उन अशर्फियों को ले घर का रास्ता लिया और उनको चूल्हे के पीछे जमीन में गाड़ आप एक कुएँ में जा छिपा। उसकी स्त्री वहीं उसको नित्य भोजन पहुँचाया करती थी। उधर सुनार उसकी तलाश में निकला और बुद्धू की स्त्री को उस कुएँ के पास जाते देख आप भी छिपे-छिपे उसके पीछे हो लिया। जब उसे मालूम हो गया कि बुद्धू इसी कुएँ में छिपा हुआ है तो दूसरे दिन उसकी स्त्री के पहले ही वह कुएँ पर पहुँचा और रस्सी में बाँधकर दो मोटी सी रोटियाँ उसे खाने को दीं। बुद्धू यह देखकर जल गया और बोला—"अरी रांड़! क्या चूल्हे के पीछेवाली सारी अशर्फियाँ खर्च हो गयीं, जो तू इन रोटियों को मेरे लिये ले आई है?" अब क्या था, सुनारजी चुपके से उसके घर की ओर चले और जब उसकी स्त्री भोजन लेकर नित्य नियम के अनुसार बुद्धू को देने चली गई, तो आप उसके घर में घुस गये और अशर्फियों को ले-देकर रफू-चक्कर हो गये।

सुनार जब घर पहुँचा, तो झूठे ही मर गया। यह देख उसकी स्त्री रोने लगी। उधर जब बुद्धू को यह मालूम हो गया कि सुनार हमको ठग गया है, तो वह झट उसके घर पहुँचा। वहाँ जाकर देखता क्या है कि सुनार की स्त्री द्वार पर बैठी फूट-फूटकर रो रही है। बुद्धू ने पूछा—"क्या हुआ है ?" सुनार की स्त्री ने कहा—"तेरा मित्र मर गया।" यह सुन बुद्धू ने कहा—"भाभी ! शोक करने से क्या होगा। एक दिन तो सभी को मरना ही होगा। लाओ, इसकी अंतिम क्रिया कर आवें।" ऐसा कहकर उसने सुनार को बाँध लिया और स्मशान में जाकर उसको एक पेड़ से लटका दिया, और आप उस पेड़ पर बैठ गया। आधी रात को चार चोर चोरी करने निकले। उन में से एक ने कहा कि यदि हमको धन मिलेगा तो मैं इस मुर्दे के लिये कफ़न दूँगा। दूसरे ने कहा कि मैं लकड़ियाँ दूँगा। तीसरे ने कहा कि मैं आग लगाकर फूँक दूंगा। चौथे ने कहा कि हम नाक काट लेंगे। निदान ऐसा विचारकर वे चोर वहाँ से चले गये। फिर जब उनके हाथ बहुत सा धन लगा, तो वे फिर वहीं आये। पहिले ने उसे कफ़न दिया। दूसरे ने उसके लिये चिता तैयार की। चौथा नाक काटने लगा। तब तो सुनार ने समझा कि मेरी नाक व्यर्थ ही कट रही है, इसलिये उसने उच्च स्वर से कहा—"अरे भाई भूतो ! दौड़ो, यहाँ मुर्दों की नाक कटती है।" यह सुनते ही ऊपर से बुद्धू ने पीपल हिलाकर कहा—"मारो, मारो, मारो।" तब तो चोरों ने विचारा कि न जाने कितने भूत आये। फिर क्या था—वे सब धन आदि छोड़ दुम दबाकर भाग निकले। उनके जाने के बाद बुद्धू ऊपर से उतर आया। दोनों ने मिलकर उस धन को सँभाला और आपस में बाँट लिया। इसके साथ ही अशर्फ़ियाँ भी बाँटी

गयीं। सच है, जो जैसा होता है, उसके साथ वैसा ही करना चाहिए।

यस्मिन् यथावर्त्तते यो मनुष्यस्तस्मिन् तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो माययावर्त्तितव्यं साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः॥

शठस्य शाठ्यं शठ एव वेत्ति नैवा,
शठो वेत्ति शठस्य शाठ्यम्॥

१६—करे तो डर, न करे तो भी डर

एक बार पिता-पुत्र सफ़र को चले। पास में घोड़ी थी, इसलिये बुड्ढे ने लड़के को उस पर चढ़ा दिया और आप लाठी टेकते पीछे-पीछे चला। कुछ दूर बाद लोगों ने उनको देखकर कहा—"देखो, यह कैसा नालायक़ लड़का है, जो आप तो घोड़े पर सवार है और बूढ़ा बाप पैदल चल रहा है।" यह सुनकर लड़का घोड़े पर से उतर आया और अपने स्थान पर अपने बाप को घोड़े पर चढ़ा दिया। कुछ दूर जाने पर फिर कुछ लोग मिले। उन्होंने कहा—"देखो, यह बूढ़ा कैसा खुदग़रज़ है, आप तो घोड़े पर सवार है और लड़के को पैदल घसीटता है।" यह सुनकर बाप ने लड़के को भी अपने पीछे घोड़े पर चढ़ा लिया। तब तो लोग और बिगड़े और बोले—"ये बड़े बेरहम हैं, जो इस बेज़बान जानवर पर दोनों बाप-बेटे सवार हैं। इनमें कुछ भी दया नहीं है।" यह सुनकर वे दोनों उतर आये। फिर लोग हँसकर कहने लगे—"ये बड़े पागल हैं, जो सवारी होते हुए भी पैदल जा रहे हैं।" यह सुनते ही बाप

ने कहा—"बाबा कर तो डर, न कर तो भी डर।" इसीलिये शास्त्र आज्ञा देता है कि—

कृतेऽपिदोषं त्वकृतेपिदोषं कृताकृते दोष मुदीरयन्ति।
तस्माद् बुधस्तत्रऽकृताकृतेद्वे विचार्य बुद्धयाऽऽचरतेसुस्त्रीत्यात्॥

१७-त्याग

एक बार एक बादशाह ने सुना कि अमुक जंगल में एक ऋषि तपस्या कर रहे हैं, तो वह उनसे मिलने के लिये उस जंगल में गया। वहाँ देखता क्या है कि—

उपल शकल मेतद् भेदकं गोमयानां।
वटुभिरुप हृतानां वर्हिषां स्तोम एषः॥
शरणमपिसामिद्भिः शुष्यमाणां भिराभिः।
विनमति पटलान्तं दृश्यते जीर्णं कुंडूयम॥

अर्थात् एक ओर सूखे उपलों के फोड़ने का पत्थर है, दूसरी ओर समिधाओं का ढेर लगा हुआ है और बीच में एक टूटी सी झोपड़ी में बैठा एक तपस्वी सूर्य्य की ओर ध्यान लगाये हुए है। बादशाह ने उसके सामने खड़े होकर अपना परिचय दिया और हाथ जोड़कर कहा—"महाराज! यदि आप को किसी बात की इच्छा हो, तो माँगिये। मैं सेवा में उपस्थित कर सकता हूँ।" उत्तर में उस ऋषि ने कहा—"राजन! मुझे किसी बात की इच्छा नहीं है।" परन्तु बादशाह ने बड़ा हठ किया। तब मुनि ने कहा—"यदि आपको देने की इच्छा ही हो, तो मेरी धूप छोड़ एक ओर हो जाइये। इसके सिवा मैं और कुछ नहीं

चाहता।" यह सुनते ही बादशाह विस्मित हो गये और अपने साथियों समेत धन्य धन्य करने लगे। ठीक है—

निरीक्षाणां मिशि सुणमिव तिरस्कार विषयः।

१८-गीता

एक पण्डित २१ वर्ष तक गीता पढ़कर घर आए। उनकी स्त्री ने परीक्षा के लिये उनके देखते ही देखते एक सईस के कन्धे पर हाथ धरा। पण्डितजी देखते ही क्रोध से बावले हो गये। तब उनकी स्त्री ने कहा—"महाराज! अभी आप गीता का अर्थ भली भाँति नहीं समझे। कृपा करके फिर पढ़ आइये।" पण्डितजी फिर गए और परिश्रम करके पढ़ने लगे। अबकी बार उन्हें गीता के ज्ञान से यह भली-भाँति मालूम हो गया कि—

मातृवत्परदारेषु पर द्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पंडितः॥

निदान, जब वे घर आए तो अबकी बार उनकी स्त्री ने फिर एक भंगी के सिर पर हाथ रक्खा। परन्तु इस बार महराजजी क्रोधित नहीं हुए; बल्कि भूमि पर बैठकर ही इस प्रकार कहने लगे—

गीता सु गीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्र विस्तरैः।
यास्वयं पद्मनाभस्य मुख पद्मुमाद्विनिः स्मृता॥

ठीक है, जिसे गीता का ठीक-ठीक अर्थ ज्ञात हो जाता है उसके मन में किसी प्रकार का विकार नहीं रह जाता। वे समझ लेते हैं कि—

धर्मार्थ काम मोक्षाणां यस्यै कोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥

१६—नशा

एक अफीमची अपने नौकर के साथ कहीं जा रहे थे। नशे में तो पहले ही से चूर थे। राह में ठहरकर खाने-पीने लगे। फिर जब चले तो घोड़ा वहीं भूल गये। रास्ते में आप नौकर से पूछते हैं कि कोई चीज तो नहीं भूल गये? नौकर ने भांग, तम्बाकू, अफीम आदि का डब्बा सँभालकर कहा—"नहीं तो, सब कुछ हमारे पास है।" जब वे लोग एक सराय में पहुँचे, तो वहाँ मलिक ने भठियारे से कहा—"दाने घास का इन्तिजाम करो।" भठियारे ने कहा—"क्या आपके पास घोड़ा भी है?" तब तो उनको ख़याल हुआ कि घोड़ा छूट गया और शीघ्र ही वे दोनों मालिक नौकर घोड़े की तलाश में चल दिये। सच है—

नहिमत्तो विजानाति वस्तुस्वं विस्मृतं महत्।
अश्वं विस्मृत्य भृत्योन गतोवासे ववोधसः॥

२०—गुदड़ी का टुकड़ा

जाड़े की रात थी। एक दरिद्र किसान के घर कुछ चोर चोरी करने के लिये गये और अँधेरे में छिप रहे। उधर दरिद्र की स्त्री अपने पति से कह रही थी कि "प्राणनाथ! यह गुदड़ी का टुकड़ा मुझे दे दो अथवा इस बच्चे को अपनी ही गोद में ले लो, क्योंकि आपके नीचे पयाल है और मेरे नीचे सूखी जमीन है। चोर ने जब यह सुना तो उसका हृदय इस दरिद्र-पीड़ित

स्त्री की दुर्दशा देख पिघल गया और वहाँ से चुपके निकल गया। फिर दूसरी जगह से चुराकर अच्छे-अच्छे कपड़ों को उन पर डाल आप रोता हुआ वहाँ से चला गया। हा दरिद्रते! तेरी भी हद हो गई। एक पापात्मा चोर का भी पत्थर-हृदय इस करुण-कहानी से पिघल गया। परन्तु फिर भी इस भारत में ऐसे जीव पड़े हुए हैं जो दूसरों को सताने में ही अपनी बहादुरी समझते हैं। भला इन क्रूर कर्मियों के लिये क्या कहा जाय? "हा हन्त हता मनाच्चिता!"

कन्या खण्डमिदं प्रयच्छ यदि वा स्वांगे गृहाणार्भकं।
रिक्तं भूतलमत्र नाथ! भवतः पृष्ठे पलालोच्चयः॥
दम्पत्योरिति जल्पतेर्निशियदा चौरः प्रविष्ठस्तदा।
लब्धं कर्पट मन्य तस्तदुपरि क्षिप्त्वा रुदन्निर्गतः॥

२१—सर्प और पंडित

एक ब्राह्मण कथा बाँचने चले पर उनको किसी ने न पूछा। निदान मार्ग में एक साँप की बाँबी पर जाकर कथा कहने लगे। जब पाठ समाप्त हो गया तब साँप ने उनको १) पूजा दिया। अब तो ब्राह्मणदेव नित्य उसे कथा सुनाने लगे और वह भी नित्य पंडितजी को एक रुपया देने लगा। संयोग से एक दिन ब्राह्मण देवता को किसी आवश्यक कार्य से कहीं जाना था, इसलिये उन्होंने उस दिन अपने लड़के को कथा कहने के लिये भेज दिया। उस दिन भी कथा हो चुकने पर साँप ने एक रुपया चढ़ाया। यह देख ब्राह्मण के लड़के ने सोचा इसके पास बहुत सा धन है, इसलिये इसको मारकर कुल रुपया ले लेना चाहिये।

ऐसा विचारकर ब्राह्मण का पुत्र दूसरे दिन एक मोटा सा डंडा भी साथ लेता गया और कथा पूरी हो चुकने पर ज्योंही सर्प निकलकर पूजा चढ़ाने लगा त्योंही ब्राह्मण के लड़के ने उस पर वार किया। सर्प वार बचाकर बिल में घुस गया। उधर ब्राह्मण के लड़के ने सोचा कि अब तो वार खाली गया; चलें, घर चलें। ऐसा विचारकर ज्योंही वे घर को चले, पीछे से साँप ने निकलकर उनको डँस लिया। साँप के काटते ही ब्राह्मण-पुत्र मर गया। उधर जब उसके आने में विलम्ब हुआ तो ब्राह्मण स्वयं आया और पुत्र को मरा हुआ देख समझ लिया कि इसने कुछ साँप का नुक़सान किया है, जिसके बदले उसने काटा है। ऐसा विचारकर वह साँप की स्तुति करने लगा। परन्तु अब भला साँप क्यों निकलने लगा? उसने बाँबी में से ही कहा—

चित्त टूटा मित्र से नहीं कथा की चाव।
तुम्हें शोक है पुत्र का मुझे शीश का घाव॥

२२-पाँच पूए

एक नगर में एक चौबेजी रहते थे। एक दिन उन्होंने अपनी स्त्री से कहा—"आज खाने के लिये पूए तैयार करो।" आज्ञानुसार पंडिताइनजी ने पाँच पूए बनाये। जब भोजन का समय हुआ तब यह झगड़ा उठा कि कौन कितना ले? पंडिताइन ने कहा—"मैंने बनाने में विशेष परिश्रम किया है, इसलिये मुझे तीन पूए मिलना चाहिये।" उधर चौबेजी बोले—"वाह, खूब कहती हो? कमाकर मैं लाऊँ और खाने के समय तुम अधिक खाओ। यह कैसे हो सकता है? मैं तीन

लूँगा और तुम-दो लो।" पर ब्राह्मणी भी पक्की थी। उसने कहा—"यह कभी नहीं हो सकता।" निदान दोनों स्त्री-पुरुषों में यह बात ठहरी कि जो पहिले बोलेगा वह दो पायेगा और जो बाद को बोलेगा उसके हिस्से में तीन पुए मिलेंगे। अंत में द्वार का फाटक बंद करके एक घर में ब्राह्मणी और दूसरे घर में चौबेजी सो रहे। अब यही देखना था कि पहले किसका मौन व्रत टूटता है। एक दिन बीत गया, दो दिन बीत गये, तीसरा दिन भी बीता; पर मौन व्रत किसी का भी न टूटा। होते-होते पन्द्रह दिन बीत गये। अब तो पड़ोसियों को यह मालूम हो गया कि ये बेचारे अब जीते नहीं हैं। इसलिये इनको देखना चाहिये कि क्या मामला है। निदान लोगों ने किवाड़ तोड़ घर में प्रवेश किया। वहाँ देखते क्या हैं कि ये दोनों ही मरे पड़े हैं। अंत में लोगों में यह बात ठहरी कि इनको स्मशान में ले जाकर जला देना चाहिये। ऐसा विचारकर लोगों ने उनकी अरथी सजाई और 'राम राम सत्य है' ऐसा कहते हुए स्मशान में पहुँचे। चिता सजाई गई। जब सब प्रबन्ध ठीक-ठीक हो गया। तब लोग उनको चिता पर रख अग्नि लगाने लगे। अब तो चौबेजी सोचे कि मैं मुफ़्त में ही जल रहा हूँ। अतः बोले—"रे राँड! ले, तू तीन ही ले।" अब तो चौबेजी की हार हुई और पंडिताइन उठकर बोलीं—"हाँ, हमारे हिस्से में तीन हुए।" जब यह भेद गाँववालों को मालूम हुआ तो बड़ी हँसी हुई। सच है:—

आहार द्विगुणः स्त्रीणां बुद्धिस्तासां चतुर्गुणः॥
षट् गुणो व्यवसायश्च कामश्चाष्टगुणाः स्मृतः॥

२३—मूर्ख-मंडली

एक बाग़ में चार मूर्ख सैर कर रहे थे। उधर से एक वृद्ध महाशय इस विचार से कि पैर में ठोकर न लग जाय, सिर नीचा किये हुए आ रहे थे। मूर्खों ने समझा कि इन्होंने हमको प्रणाम किया है। परन्तु यह भावना उठते ही उनमें इस बात का झगड़ा मचा कि इन्होंने किसको प्रणाम किया है। हरएक यही कहता कि इन्होंने मुझे ही प्रणाम किया है। अंत में झगड़े ने तूल पकड़ा! फिर उन्होंने यह निश्चय किया कि चलकर उसी वृद्ध से ही पूछना चाहिए। ऐसा विचारकर वे उस वृद्ध के पास गये और बोले—"महाशय! ठीक-ठीक बताना, आपने किसको प्रणाम किया है?" वृद्ध ने समझ लिया कि ये चारों के चारों मूर्ख हैं। अतएव उन्होंने उत्तर दिया कि मैंने सब से बड़े मूर्ख को प्रणाम किया है।" अब तो वे "मैं बड़ा मूर्ख हूँ", "मैं बड़ा मूर्ख हूँ" कहकर झगड़ने लगे। वृद्ध ने कहा—"यदि आप लोग अपनी-अपनी मूर्खता का वर्णन करें तो अवश्य यह बात मालूम हो जायगी कि सबसे बढ़कर मूर्ख कौन है?" मूर्खों की समझ में यह बात आ गई और अपनी-अपनी मूर्खता का बयान करने लगे। पहिले ने कहा—

"मेरी ससुराल में एक बड़ा भारी उत्सव था। मेरे यहाँ भी निमंत्रण आया। मैंने बड़े ठाट-बाट से अपने को सजाया और ससुराल चला। नगर के समीप पहुँचते ही सूर्य्यास्त हो गया। मैंने सोचा कि रात्रि को जाना ठीक न होगा, क्योंकि वे लोग मेरे वस्त्र-आभूषणों को रात्रि में देख न सकेंगे। इस लिये आज रात्रि को इस बाहरवाले बाग़ में ठहर जाऊँ। ऐसा विचारकर वहीं ठहर गया। किन्तु कुछ रात जाते ही मुझे

भूक लगी। सोचा कि मँगता का रूप धर अपने ससुर के घर जाऊँ और भीख माँगकर अपनी क्षुधा मिटा लूँ। इसके लिए अपने सब वस्त्र-आभूषणों को उतार एक पोटली में रख वहीं एक पेड़ के नीचे रख दिया और आप मँगता का भेष बदल भिक्षा माँगने चला। जब ससुर के द्वार पर जाकर मैंने पुकारा कि बाबा! कुछ मुझको भी मिले, तब भीतर से मेरी स्त्री जो उस समय वहीं थी भिक्षान्न लेकर निकली। मैंने समझा कि कहीं यह देख न ले; नहीं तो ग़ज़ब हो जायगा। ऐसा विचार पीछे को हटने लगा। उधर वह स्त्री भी आगे को बढ़ी। इस तरह मैं पीछे को हटने लगा। संयोग से द्वार पर एक पुराना कुवाँ था। हटते-हटते मैं उसी में जा गिरा। अब तो लोगों ने चिराग़ लेकर मुझे निकाला और पहचानकर धिक्कारना आरम्भ किया। मैंने सारा वृत्तान्त सुनाकर उन पर अपनी मूर्खता प्रगट की। फिर जब बाग़ में जाकर देखा तो वहाँ पोटली भी ग़ायब! न मालूम कौन उसे चुरा ले गया?"

दूसरा मूर्ख बोला—"महाशय! मैं भी अपनी ससुराल गया। वहाँ के लोगों ने आदर-सत्कार कर खाने को कहा। मेरे मुँह से निकल गया—'खाकर चला था'। इस पर लोगों ने बड़ा हठ किया, परन्तु मैंने भी यह समझ लिया कि 'जाय लाख रहे साख' के अनुसार अब खाना उचित नहीं। निदान, वे बेचारे हार मानकर सो रहे। मैं भी चारपाई पर पड़ रहा। परन्तु आधी रात होते ही भूक लगी। अब सोचा कि इनको जगाना ठीक नहीं, ऐसा विचारकर उठ बैठा और इधर-उधर ढूँढ़ने लगा। एक बर्तन में लड्डू रक्खा था। झट मैंने उठाकर मुँह में रक्खा। उधर खटका सुन सासजी जगीं और मुझको पहिचानकर बोलीं—'कहिये क्या है?' मेरे मुँह में लड्डू था

इसलिये साफ़-साफ़ बोल न सका और हूँ-हूँ करने लगा। सासजी ने समझा कोई बीमारी हो गई है। झट उन्होंने वैद्य को बुलाया। वैद्य ने गाल को फूला हुआ देखकर उसमें नश्तर मारा। अब क्या था, खून की धार बह चली। मैंने भी उस समय ऐसी बुद्धिमानी की कि उस लड्डू को इधर से उधर कर लिया। यह देखकर वैद्य ने यह समझा कि बीमारी इधर से उधर हो गई है। इसलिये उन्होंने कहा—'अगर एक नश्तर इधर भी लगा दिया जाय तो बीमारी साफ हो जायगी।' सास ने आज्ञा दे दी। तब तो उस निर्दयी मूढ़ वैद्य ने मेरा यह दूसरा गाल भी फाड़ डाला। नश्तर लगते ही लड्डू मुँह से निकल पड़ा। यह देख लोग हँसने लगे। मुझे भी बड़ी लज्जा मालूम हुई और वहाँ से चुपके से भाग निकला।"

इस पर तीसरे ने कहा—"एक बार मैं अपनी ससुराल चला। रास्ते में एक कुएँ के सहारे लेटा, तो नींद आ गई। जब चौंककर उठा, तो मेरे शिर की पगड़ी कुएँ में गिर पड़ी। जब शाम को ससुराल पहुँचा, तो मुझे नंगे शिर देख लोगों ने समझा कि बीबी मर गई है, इसलिये ये नंगे सर बदशकुनी सुनाने आ रहे हैं। अब क्या था, वहाँ रोना-पीटना मच गया। जब मैं पहुँचा तो उन्हें रोने लगा। जब खूब रोना-पीटना हो चुका तो साले साहब ने पूछा—'खैर, जो होना था हो गया, आप तो अच्छे हैं?' मैंने पूछा—'जो मरे हैं उनको कौनसी बीमारी हुई थी।' उत्तर में उन्होंने कहा—'कोई नहीं, यहाँ तो सब कुशल है, पर आप नंगे सिर आये हैं इससे समझा कि बीबी मर गई। इसी से यहाँ हम लोग रो-पीट रहे हैं।' यह सुनते ही मैंने सिर सँभाला, तो पगड़ी गायब! अब क्या था, वहाँ से भागा और आज तक फिर ससुराल का नाम नहीं लिया।"

अन्त में चौथे ने कहा—"पहिले मेरे पास बहुत धन था। एक दिन मैंने एक ब्राह्मण को बुलाकर उससे कहा—'कहीं आप मेरा व्याह करा दें।' ब्राह्मण ने कहा—'अच्छा अच्छा।' दूसरे दिन वह आकर कहने लगा कि मैंने तुम्हारी सगाई ठीक कर दी है। अमुक दिन व्याह हो जायगा। मैं बड़ा खुश हुआ और उस ब्राह्मण को बहुत सा धन दिया। कुछ दिन बाद फिर ब्राह्मणदेव आये और बोले—'तुम्हारी शादी हो गई।' अब तो मुझे और भी खुशी हुई और उनको बहुत सा धन देकर बिदा किया। कुछ दिन बाद वही पंडितजी फिर आये और बोले—'आपके एक लड़का हुआ है।' मैं यह सुनते ही हर्ष से विह्वल हो गया और उनको अपार धन दिया। इस तरह होते-होते मेरा सारा धन पंडितजी के यहाँ चला गया। निदान, एक दिन मैंने पंडितजी से कहा—'आजकल हम बड़ी दीन दशा में हैं। कृपा करके मुझे हमारे परिवार से मिला दीजिये। अब हम वहीं स्त्री के साथ आनन्द से रहेंगे। इसके बदले आप मेरा बचा हुआ सारा धन ले जाइये।' पंडितजी ने कहा—'बहुत अच्छा।' ऐसा कहकर वे मुझे एक बड़े भारी मकान के पास ले गये और बोले—'यही आपका घर है, भीतर चले जाइये। वहीं आपकी स्त्री और लड़के से भेंट होगी।' ऐसा कहकर वे तो चले गये; परन्तु मैं उस घर में घुसा और लड़के को पुकारा। पुकार सुनते ही लड़का दौड़ा हुआ आया। मैं उसके लिये पहिले ही से मेवा-मिठाई लिये हुए था, इसलिये उसको दे दिया। लड़का उसे लिये हुए अपनी माँ के पास पहुँचा। उस स्त्री ने समझा कि मेरे पति के मित्र आये हुए हैं, इसलिये उसने इतर पान भेजा। मैंने अहोभाग्य समझकर उसे ग्रहण किया और लड़के को गोद में लेकर द्वार

पर बैठ रहा। उस समय मेरी खुशी का अन्दाजा लगाना कठिन था। कुछ देर के उपरान्त उस स्त्री का पति आया और मुझको देख उसने स्त्री से पूछा—'यह नया सा आदमी लड़के को गोद में लिये हुए द्वार पर कौन बैठा है?' उसकी स्त्री ने जवाब दिया—'मैंने तो तुम्हारा मित्र समझकर उसका आदर किया है। जाकर पूछ लीजिये।' यह सुनकर वह मेरे पास आया और धीरे से पूछा—'महाशयजी ! मैं आपको पहचानता नहीं, बतला दीजिये कौन हैं?' अब तो मुझसे रहा न गया, क्रोध से लाल-लाल आँखें कर बोला—'पहिचानने की क्या जरूरत है? तुम्हीं बताओ कौन हो? यह तो मेरी स्त्री का घर है, यह मेरा लड़का है और वह घर में मेरी स्त्री बैठी हुई है।' इतना सुनना था कि वह समझ गया कि मैं पागल हूं और मुझको गाली देने लगा। भला मैं कब चुप रहता, मैंने भी गाली देना शुरू किया। तब तो मार-पीट की नौबत पहुँची। वह था मुझसे कड़ा, इसलिये उसने मारकर मुझको गिरा दिया। चेत आने पर मैंने प्राण बचाकर घर का मार्ग लिया।

यह सुनकर वृद्ध ने कहा—"मैंने तुझे ही प्रणाम किया है, क्योंकि तुम्हीं सब से मूर्ख हो।"

२४—चालाकी से सर्वनाश

एक बार तीन आदमी कहीं जा रहे थे। रास्ते में उनको एक पहाड़ी मिली। दोपहर का समय था, धूप बड़ी तेज पड़ रही थी, इसलिये वे तीनों उस पहाड़ी की खोह में जाकर आराम करने लगे। वहाँ उन्होंने देखा कि एक कोने में बहुत

सा सोना पड़ा हुआ है। अब तो उनको चिन्ता हुई कि किस प्रकार इस सोने को घर ले जायँ। दिन को ले जाने में तो यह भय था कि कहीं कोई देख न ले। इस पर यह तय हुआ कि एक बाजार से खाना ले आवे और दो वहीं पर बैठे रहें; और रात को अँधेरे में सोना ले जावेंगे। उनमें से एक बाजार से खाना लेने के लिये भेजा गया। उसके जाने पर इन दोनों ने सोचा कि किसी प्रकार ऐसा हो कि यह सोना हमीं लोगों को मिले। उन पर लालच ने इतना प्रभाव डाला कि उन्होंने यह इरादा कर लिया कि जब तीसरा आवे तो उसे मार डालें। उधर तीसरे ने सोचा कि सारा सोना मुझीको क्यों न मिले। ऐसा विचार-कर वह बाजार से शराब की तीन बोतलें और कुछ ऐसा ज़हर लाया जिसके खाते ही मनुष्य मर जाय। उसने दो बोतलों में तो ज़हर मिला दिया और तीसरी बोतल अपने लिये रख ली और पहिचान के लिये उसने उन पर निशान लगा दिया। जब वह खोह में पहुँचा तो उसके साथी उसके साथ खेलने लगे, जिससे वक्त कट जाय। खेलते-खेलते दोनों ने उसके पेट में कटार मार दी और वह मर गया। इसके बाद शेष दोनों आदमी खाना खाने बैठे और शराब पीने लगे। शराब में तो ज़हर मिला ही था; इसलिये उसके पीते ही वे दोनों भी मर गये। सच है—चालाकी से सर्वनाश हो जाता है। जिस धन के लिये मनुष्य अधर्म और पाप करता है, वह कभी उसके साथ नहीं जाता। केवल धर्म ही मनुष्य का सच्चा हितैषी और सच्चा सखा है।

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे नारी गृहे द्वारजनः श्मशाने।
देहश्चितायां परलोक च मार्गे धर्मानुगा गच्छति जीव एकः॥

———

२५ नंगी भली कि छींके पाँव

एक कुटिला स्त्री अपने जेठ (पति के बड़े भाई) पर आसक्त थी। एक दिन उसके देवर ने उसे स्नान करते समय नंगी देख लिया। अब तो वह स्त्री बहुत क्रोधित हुई और गालियाँ देने लगी। उसके पति और जेठ ने भी बहुत समझाया; परन्तु उसने किसी की एक न मानी और अन्न-जल छोड़ यह हठ करने लगी कि देवर घर से निकाल दिया जाय। यह देख उसकी ननँद, जो उसकी व्यवस्था से पूरी जानकार थी (बात यह थी कि वह नित्य अपनी ननँद के ऊपरवाले छींके पर पैर रखकर आधी रात को अपने जेठ के पास जाती थी और फिर उसी प्रकार लौट आती थी) नित्य-नित्य यह तमाशा देखती; परन्तु लोक-लज्जा समझकर कुछ न कहती। निदान हार मानकर उसने एकान्त में भाभी को समझाना आरम्भ किया—"भाभी ! शान्त हो, खा-पी लो और क्रोध न करो; क्योंकि देवर (द्वितीयः वरः देवरः भी) पति के ही समान गिना जाता है।" तब तो उस स्त्री ने क्रोध से भरकर कहा—"मुँह जली ! चुप भी रह। आज तक किसी ने मेरा मुँह तक न देखा और इस निगोड़े ने मेरा परदा फास किया। मैं लज्जा से मरी जाती हूँ। खाना भला किसे सुहाता है ?" यह सुनकर ननँद ने कहा—

बारह बरस पीहर में रही, अपने मन की मन ही रही।
लगी अभी कहन को दाँव, नंगी भली कि छींके पाँव ॥

यह सुनते ही भाभीजी शान्त हो गयीं और ननँद के पैरों पर गिरकर कहने लगीं—"किसी से कुछ भी न कहो, मैं अभी खाये-पीए लेती हूँ।"

२६-परमात्मा ही रक्षक है

एक पेड़ पर एक कबूतर और एक कबूतरी बैठी हुई थी। इतने में एक वधिक धनुष-बाण लिये हुए आ निकला और इनको बैठा देख मारने के लिये धनुष पर बाण चढ़ा निशाने को ठीक करने लगा। इतने ही में ऊपर से एक बाज भी कहीं से उड़ता हुआ आ निकला और कबूतरों को देख उनको पकड़ने के लिये झपटा। चारों ओर से अपना अंत समय देख कबूतरी व्याकुल हो अपने पति से बोली—

"कान्त यक्ति कृतिका कुलतया नायान्त कारेऽधुनो।
व्याधोऽधाधूत्त चापमान्थत शरा शेतन्तु खे दश्यते॥
एवं सत्यऽहिन् सदष्ट इपुणा शेनातु तेना हथा।
तूर्णं तातुरतां यमालय महादृवां विचित्रगतिः॥

हे प्राणनाथ! सिर पर काल आ गया है, नीचे दुष्ट वधिक शर सन्धाने खड़ा है और ऊपर से उड़ता हुआ बाज भी झपटने को तैयार है।" यह सुन कबूतर बोला—"प्रिये! चिन्ता न करो। ऐसे समय में परमात्मा ही हमारा रक्षक है। उसके सिवा किसी की भी सामर्थ्य नहीं कि एक बाल भी बाँका कर सके।"

हुआ भी ऐसा। ज्योंही वधिक ने बाण छोड़ना चाहा, त्योंही उसके पैर में एक जहरीला साँप चिपट गया और उसने वधिक को काट खाया, जिसके सबब से उस बहेलिये का निशाना तिरछा हो गया और बाण बाज के जा लगा, जिससे वह नीचे गिरकर मर गया। इधर वधिक पहले ही यमालय पहुँच चुका था। परमेश्वर! तेरी महिमा धन्य है। जिसको तू बचाना चाहता है, उसको दुनिया की कोई शक्ति मार नहीं सकती।

ईश्वर जो हम पर रहें, भली-भाँति अनुकूल।
फिर क्या शत्रू कर सके, बनो रहे प्रतिकूल॥

२७-भगवान सब देखते हैं

मुसलमान जब रोजा रहते हैं, दिन को जल तक नहीं पीते ; परन्तु सभी एक से थोड़े ही होते हैं। एक नबीरसूल नामी मुसलमान किसी नगर में रहता था। रोजे के दिनों में जब बेचारे और मुसलमान दिन भर बिना जल के तड़पते थे, तो आप स्नान के बहाने किसी तालाब में जाते और जल में डुबकी लगा खूब ठंडा जल उड़ाते और लोगों से कहते कि मैं ऐसी चोरी करता हूँ कि अल्लामियाँ भी नहीं देख पाते। होते-होते बहुत दिन बीत गये। एक दिन जब नित्य नियमानुसार ठंडा-ठंडा जल पी रहे थे, तो एक टेंगर मछली उनके गले में अटक गई और फिर उनको क़ब्र में सुलाकर ही निकली।

ऐसे ही बहुत से लोग ईश्वर से चोरी करते हैं। वह नहीं समझते कि ईश्वर सर्वव्यापक है और सबको देखता है। जो जैसा करता है, वह उसे वैसा ही फल भी देता है। मूर्ख नहीं समझते कि—

एको देवो सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कार्याध्यक्षः सर्व भूताधिवासः साक्षीचेता केवलो निर्गुणश्च॥

एकोहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे।
नित्यं हृदि वसत्येष पुण्य पापेक्षितः मुनिः॥

२८—भाव

जब श्रीरामचन्द्रजी ने लंका पर चढ़ाई की तब रावण का भाई विभीषण, जिसे रावण ने निकाल दिया था, राम की शरण में आया। विभीषण को आते देख महाराज रामचन्द्रजी ने खड़े होकर उसका स्वागत किया और बड़े प्रेम से उसको लंकेश कहकर आसन पर बैठाया। समय पाकर सुग्रीव ने रामचन्द्रजी से पूछा—

"महाराज! विभीषण को आपने लंकेश के नाम से पुकारा है, इसका भेद कुछ समझ में नहीं आता। क्योंकि, अभी न तो वह लंकेश है ही और होने में भी संदेह मालूम होता है। शायद रावण महारानी सीता को सौंप आपसे क्षमा माँग ले और आप भी संधि कर लें, तो फिर आपका लंकेश कहना विभीषण के लिये ठीक न होगा।"

उत्तर में रामचन्द्रजी बोले—"मैं रावण से लंका का राज्य विभीषण को दिला दूँगा और रावण को अपनी अयोध्या की राजगद्दी छोड़ दूँगा; पर अपने वचन और अपनी प्रतिज्ञा से विचलित नहीं हो सकता।" सत्य है—प्रतिज्ञापालन और वचन की दृढ़ता इसी को कहते हैं।

२९—मूर्ख ज्योतिषी

एक मूर्ख ज्योतिषी अपने देश में जीविका से रहित होकर परदेश को चला गया और वहाँ मिथ्या ज्ञान प्रगट करने के लिए लोगों के सम्मुख अपने बालक को हृदय से लगाकर रोने लगा। उसे रोते देख लोगों ने पूछा—"आप ऐसे अधीर क्यों हो रहे हैं?" उत्तर में ज्योतिषीजी ने कहा—"मैं भूत, भविष्य

और वर्तमान तीनों काल की बातें जानता हूँ, इससे मुझे मालूम हुआ है कि आज के सातवें दिन यह बालक मर जायगा।" यह कहकर उस दिन के सातवें दिन उसने अपने बालक को मार डाला। इसी तरह से मूर्ख लोग तुच्छ धन के लिये अपने पुत्र तक को भी मार डालते हैं! शोक है इस मिथ्या ज्ञान को और धिक्कार है इस मूर्खता के व्यवहार पर! ऐसे ही एक और मूर्ख महाशय की कथा है कि उसका पुत्र मर गया तो झट उसने अपने दूसरे पुत्र को भी इस विचार से मार डाला कि मेरा एक पुत्र अकेला बहुत दूर के मार्ग में भला कैसे जा सकेगा?

३० —परमात्मा

उदकपात्र सहस्रेषु ज्योतिरेकोऽवभासते।
तथैक आत्मा सर्वत्र वस्तुतो भासते विभुः॥

"जैसे अनेकों जल के घड़े भरे हुए पड़े हों; परन्तु चंद्रमा या सूर्य्य की ज्योति उन सबों में एक समान पड़ेगी वैसे ही परमात्मा भी सभी जीवों और सभी वस्तुओं में सर्वदा प्रकाशमान रहता है।"

इसका दृष्टान्त यों है कि एक बार किसी तीर्थ-क्षेत्र में सभी मत-मतान्तरों के लोग बैठे हुए परस्पर मत-मतान्तर सम्बंधी वाद-विवाद कर रहे थे। कोई किसी दूसरे की बात को मानने के लिये तैयार न था और सभी अपने-अपने मत की प्रशंसा में लगे हुए थे। निदान, जब झगड़ते-झगड़ते लाठी की नौबत आ पहुँची, तो उसमें से एक अवधूत बोला—"भाई, वृथा विवाद क्यों कर रहे हो, देखो और समझो—

घट-घट में मूरति वही, शङ्कर नहीं विवेक।
जैसे फूटी आरसी, खण्ड-खण्ड मुख एक॥

यह सुन सभी प्रसन्न हो गये और एक स्वर से बोले—

तिलेषु तैलं दधि नीव सर्पि रारण्य स्त्रोतस्स्वंरणीषु चाग्निः।
एवमात्मात्मनि सन्निगृह्यते सत्ये नैनं तपसा योनु पश्यति॥

३१—शिक्षा का पात्र

जाड़े की रात थी। कड़ाके का जाड़ा पड़ रहा था। ऐसे समय में एक पेड़ पर बैठा हुआ एक बन्दर सिकुड़ रहा था। उसके पास ही एक टहनी पर बये का घोंसला था और वह बया उसमें बैठा हुआ आनन्द कर रहा था। बन्दर की दुर्दशा देखकर उसे दया आई और उसने बन्दर से कहा—"ऐ बन्दर! तेरे हाथ-पाँव मनुष्य के समान हैं, फिर तू उनसे काम क्यों नहीं लेता और अपने लिये एक अच्छा सा घोंसला क्यों नहीं बना लेता? मुझको देख कि मैं एक छोटा सा पखेरू हूँ; परन्तु मैंने अपने लिये एक घोंसला बना लिया है और इसमें सुख की नींद सोता हूँ।" बन्दर यह सुनकर बहुत बिगड़ा और एक हाथ मारकर बये का घोंसला नोच डाला। बया बहुत पछताया और कहने लगा—"बड़े लोगों ने सच कहा है—,

सीख वाको दीजिये, जाको सीख सुहाय।
सीख न दीजै बानरा कि घर बये का जाय॥"

३२—संगत का फल

अर्हेमुनीनां वचनं श्रृणोमि श्रृणोत्ययं वैयमनस्य वाक्यम्।

नाचास्य दोषो न च मे गुणो वा संसर्गता दोष गुणा भवन्ति ॥"
"तुख्म तासीर सोहबते असर"

किसी समय एक लूट में एक सिपाही के दो तोते हाथ लगे। उनमें से एक तोता ब्राह्मण का और दूसरा एक मुसलमान का था। वे दोनों पास ही पास रहा करते थे। निदान, सिपाही उन्हें अपने मालिक के यहाँ ले गया। वहाँ ब्राह्मण के तोते ने सवेरा होते ही "मंगलं भगवान विष्णुम् मंगलं गरुड़'''''।" तथा 'मेघैर्मेदुरमम्बरं" आदि उत्तम-उत्तम मंगल के पद कहे, तो उन्हें सुनकर मालिक बड़ा प्रसन्न हुआ और दूसरे तोते से कहा—"तू भी पढ़।" यह सुन दूसरे तोते ने कहा—"दः बहनचोद।" यह सुन मालिक ने कहा—"अबे क्या पढ़ता है?" तो फिर उस तोते ने कहा—"दः सुअर के बच्चे।" तब तो मालिक ने आज्ञा दी कि शीघ्र ही इसकी गर्दन काटो। आज्ञानुसार जब उसकी गर्दन कटने लगी तो उस ब्राह्मण के तोते ने कहा—

"मैं तो मुनिजन तथा ब्राह्मणों की बात सुना करता था और यह यवन (म्लेच्छों) के साथ रहा है; इसलिये न तो इसको गाली देने का दोष है और न मुझ में श्लोक के कहने का गुण है। यह दोष तो संसर्ग अथवा साथ में रहने से ही हो जाते हैं। यथा—

"पद्मयोनिः समुत्पन्नो ब्रह्म लोक पितामहः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेरकारणम् ॥
कैवर्ति गर्भ सम्भूतो व्यासो नाम महामुनिः।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेर कारणम् ॥
भिल्लका गर्भ संभूतो वालमीकिच महामुनिः।

तपसा ब्राह्मणा जातस्तस्माज्जातेर कारणम् ॥
क्षत्रियो गर्भ सम्भतो विश्वामित्रो महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेर कारणम् ॥
हरिणी गर्भ सम्भूतो ऋष्यश्रृंगो महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातेर कारणम् ॥
उर्वशी गर्भ सम्भूतो वशिष्ठो हि महामुनिः ।
तपसा ब्राह्मणा जातस्तस्माज्जातेर कारणम् ॥"

३३-ईश्वर कहाँ है और क्या करता है ?

एक वार अकवर वादशाह ने वीरवल से पूछा कि ईश्वर कहाँ है और क्या करता है ? प्रश्न वड़ा गम्भीर था; इसलिये वीरवल ने इसका उत्तर देने के लिये सात दिन की मोलहत माँगी और घर जाकर इसका उत्तर विचारने लगे। वीरवल ने यद्यपि वड़ा दिमाग़ लगाया; परन्तु इस प्रश्न का उत्तर निकल न सका। वीरवल. वड़ी चिन्ता में पड़े। चार-पाँच दिन में ही चिन्ता के कारण उनकी कान्ति में अन्तर पड़ गया और चन्द्रानन राहु-ग्रस्त चन्द्रमा की भाँति मलीन हो गया; पर कर क्या सकते थे ? इसके दिमाग़ ने जवाव दे दिया। एक दिन उनको इस तरह चिन्तित देख उनका लड़का, जिसकी अवस्था अभी दस वर्ष से अधिक न थी, अपने वाप से वोला— "पिताजी ! आपकी इस अवस्था का मूल कारण क्या है ? आप ऐसे चिंतित क्यों दीख पड़ते हैं ?" वीरवल ने उत्तर दिया—"बेटा ! तुम अभी वच्चे हो, दुनिया के झगड़े को समझ

नहीं सकते ; इसलिये व्यर्थ इन बातों में पड़ना तुम्हें उचित नहीं। जाओ और खेलो-खाओ।" पुत्र इस बात को सुन बोला—"हाँ पिताजी ! यह तो सत्य है ; परन्तु मैं भी आप ही का पुत्र ठहरा। 'आत्मावैजायते पुत्रः' के अनुसार मुझ में भी आपकी ही आत्मा है ; इसलिये जो कुछ हो साफ़-साफ़ कह सुनाइये।" पुत्र की इस विवेक-भरी बातों को सुनकर बीरबल ने समझ लिया कि इसके सामने बादशाह के प्रश्नों का कहना कुछ अनुचित न होगा। ऐसा समझ उन्होंने कहा—"पुत्र ! एक दिन बादशाह ने मुझ से प्रश्न किया कि ईश्वर कहाँ है और क्या करता है ? इसके लिये हमने सात दिन की मोहलत ली थी। कल ही उत्तर देने का दिन नियत है, इसीलिये मुझको चिन्ता है।"

बीरबल की बात सुन उसके लड़के ने कहा—"पिताजी ! बादशाह भी महामूर्ख मालूम होता है, जो इस अदने सवाल को उसने आपसे पूछा। इस सवाल के उत्तर देने के लिये तो मेरे ऐसे लड़कों की जरूरत थी। चलिये, कल दरबार में इस प्रश्न का उत्तर मैं दूंगा।" पहले तो बीरबल को लड़के की बात पर विश्वास न आया, परन्तु अंत में दूसरे दिन उसे लिये हुए दरबार में पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही बादशाह ने बीरबल से अपने प्रश्नों के उत्तर माँगे। उत्तर में बीरबल ने कहा—"महाराज ! इस छोटे से प्रश्न का उत्तर तो एक बालक दे सकता है। मैं क्या दूं ?" यह सुनते ही बादशाह दर्बारियों सहित हँस पड़ा और बोला—"कैसी बेहूदा बात है कि जो इस प्रश्न का उत्तर एक लड़का देगा ?" बीरबल ने कहा—"अगर विश्वास न हो, तो इसी लड़के से पूछ लें।" बादशाह ने वही प्रश्न इस लड़के से भी किया। लड़के ने एक कटोरा दूध माँगा, जो फौरन हाजिर

किया गया। इसके बाद लड़के ने बादशाह से पूछा—"क्या इस दूध से मक्खन निकल सकता है?" बादशाह ने कहा—"हाँ" तब लड़के ने पूछा—"इस दूध में तो मक्खन हमें नहीं दीखता।" बादशाह ने कहा—"हाँ, यह ठीक है कि दूध में मक्खन नहीं दीखता; पर है उस दूध में ज़रूर।" तब लड़के ने कहा—"शाहंशाह! आपके पहिले प्रश्न का उत्तर हो गया कि ईश्वर सर्व-व्यापक है। जिस प्रकार दूध में मक्खन हर जगह मौजूद है पर दीखता नहीं, उसी प्रकार ईश्वर भी गुप्त रीति से सर्व-व्यापक है।

तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिरारण्य स्रोतस्स्वरणीषु चाग्निः।
एवयात्मात्मनि सन्निगृह्यते सत्ये नैनं तपसा यो नु पश्यति॥

"जैसे तिलों में तेल, दही में घी, पहाड़ी झरनों में पानी और अरणी की अग्नि में ज्योति है; उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा भी सर्वत्र है।"

यह सुन बादशाह ने कहा—"हाँ, पहिला प्रश्न तो हल हो गया; परन्तु दूसरे प्रश्न का उत्तर दो कि ईश्वर क्या करता है?" यह सुन लड़के ने पूछा कि आपने यह प्रश्न किस भाव से किया है—"शिष्य के भाव से या गुरू के भाव से?" बादशाह ने जवाब दिया—"शिष्य के भाव से।" तब लड़के ने निडर होकर कहा—"जनाब! यह तो अनुचित है कि गुरु खड़ा रहे और शिष्य तख़्तेशाही पर रौनक़-अफ़रोज हो।" बादशाह ने लज्जित होकर उसे भी अपने पास तख़्त पर बैठा लिया। लड़के ने तख़्त पर बैठकर कहा—"लीजिये जनाब! आपके दूसरे प्रश्न का भी उत्तर हो गया। बस ईश्वर भी यही करता है कि क्षण भर में राजा को रंक और रंक को राजा बना देता है।"

चाहे तो रंक को राव करैं अरु राव को द्वारहिं द्वार फिरावैं।
चाहे तो मेरु को धूरि करैं अरु धूरि को चाहे सुमेरु बनावैं॥
चींटी के पायँ में बाँधि गयन्दहिं चाहे समुद्र के पार लगावैं।
रीति यही करुणानिधि की द्विजराज कहैं हमरे मन भावैं॥

३४—अदालत से नाश

एक पेड़ पर एक तोता रहता था। एक दिन आँधी-बरसा से भटककर एक दूसरा तोता भी कहीं से आ निकला और पहले तोते से कहा—"भाई! मैं परदेशी हूँ। आँधी के कारण मार्ग भूलकर यहाँ आ निकला। कृपा करके आज रात को अपने घोंसले में ठहरने दीजिये। कल सवेरा होते ही मैं अपने घर चला जाऊँगा।" यह सुनकर पहिले तोते को दया आ गई और अतिथि जान उसे अपने यहाँ ठहरा लिया और अपने जङ्गल में से अच्छे-अच्छे फल लाकर उसको खाने के लिये दिये। जब सवेरा हुआ, तो पहिले तोते ने दूसरे से कहा कि अब आप अपने घर का मार्ग लें; परन्तु दूसरा तोता लालच में आ गया और कहने लगा—"वाह! यह तो मेरा घोंसला है। तुम जहाँ चाहो जाओ। रात भर हमने अपने घर में तुम्हें आश्रय दिया, यही क्या कम है?" यह सुनकर पहला तोता ठगा सा रह गया और अपने किये पर पछताने लगा। उसने बहुतेरा समझाया पर उस दुष्ट तोते ने एक न मानी। निदान, दोनों में यह विवाद होने लगा कि यह घोंसला किसका है? अन्त में वे दोनों निर्णय कराने के लिये किसी सभ्य को ढूँढ़ने लगे। कुछ दूर जाने पर उनको एक बूढ़ी बिल्ली बैठी हुई मिली। बिल्ली को देखकर और उसे धर्मात्मा समझ वे दोनों

उसके पास गये और हाथ जोड़कर बोले—"भगवन् ! आप बड़े धर्मात्मा और तपस्वी हैं, इसलिये आपही झगड़े का फ़ैसला करें। यह सुनकर बिल्ली ने कहा—"बच्चो ! मैं तप करते-करते बहुत क्षीण हो गई हूँ, इसलिये भली भाँति सुनाई नहीं देता। समीप आकर कहो तो कदाचित मैं इसका निर्णय कर सकूँ। क्योंकि ठीक-ठीक न्याय न करने से मनुष्य के दोनों लोक बिगड़ जाते हैं।" बिल्ली की उस वचन-मधुरता पर तोते मुग्ध हो गये और समीप जाकर उससे अपनी कहानी कहने लगे। दोनों की बातें सुन बिल्ली ने दूसरे तोते को पकड़ लिया और यह कहते हुए कि तू बड़ा अन्यायी और धूर्त है जो दूसरे के घोंसले को अपना बताता है, मारकर चट कर गई। इसके बाद ही उसने पहले तोते को भी पंजे में दबोचकर पकड़ लिया और खाने लगी। तोते ने गिड़गिड़ाकर कहा—"अरे, इसमें मेरा क्या दोष है ?" उत्तर में बिल्ली ने कहा—"सचमुच तेरा कोई दोष नहीं, परन्तु इसका शुकराना भी तो चाहिए।" यह कहकर बिल्ली ने उसे भी सफ़ाचट किया। सच है—नीचों पर विश्वास करना सब तरह से हानि ही करता है।

न कुर्यात् क्षुद्र विश्वासं घातमेव करोति सः।
यथा विश्वासिनौ दुर्वैभक्षयामास पक्षिणौ ॥

क्या अदालत करनेवाले भारतीय भाई इस उपाख्यान से कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे ?

३५—मृत्यु

एक बूढ़ा लकड़हारा सिर पर लकड़ियों का गट्ठा लिये

हुए जा रहा था। एक तो गर्मी की लू, दूसरे उसका बोझा भी भारी ही था, इसलिये वह बड़ा दुखी हुआ और एक पेड़ के नीचे अपने बोझ को पटककर बोला—"इस जिन्दगी से तो यही अच्छा था कि मौत आ जाती और मैं मरकर इन दुःखों से छुटकारा पा जाता।" लकड़हारे का यह कहना था कि मौत आकर सामने खड़ी हो गई और बोली—"तुमने मुझे किसलिये और क्योंकर याद किया?" बूढ़े ने पूछा—"आप कौन हैं?" इसके उत्तर में उसने कहा—"मैं मौत हूँ।" अब तो बूढ़े के होश-हवास जाते रहे, किन्तु धीरज धरकर कहने लगा कि मैंने आपको इसीलिये बुलाया है कि इस बोझे को उठा दें; क्योंकि मुझे अभी बहुत दूर जाना है। सच है—मनुष्य जितना मौत से डरता है उतना और किसी बात से नहीं—

देह त्यागं न वाञ्छन्ति केपि दुःख भुजोभृशम्।
यथा काष्ठग्राहो मृत्युं वांछितं वांछितिस्मनो॥

३६—ज्ञान

एक बार दो सरदारों में लड़ाई हुई। एक की फौज बिल्कुल तितर-बितर हो गई और वह सरदार डर के मारे प्राण बचा-कर भाग निकला। जाते-जाते उसे एक पुराना कुवाँ मिला। उस कुएँ के बीच से एक पीपल का छोटा-सा वृक्ष निकला हुआ था। सरदार डर के मारे सुन्न हो रहा था। उसे वह कुवाँ देख बड़ी आशा हुई। क्योंकि बहते हुए को एक तिनका भी साहारा हो जाता है। सरदार झट उसी कुएँ में उस पीपल की डाली पकड़ नीचे उतर गया और एक मोटी शाख पर जा-कर बैठ रहा। जब उसने नीचे की ओर दृष्टि डाली, तो क्या

देखता है कि उस पीपल की जड़ का श्याम और श्वेत दो चूहे काट रहे हैं। यह देख सरदार ने सोचा कि यहाँ से उतर किसी दूसरी ओर जाकर बैठ रहूँ, जहाँ कि प्राण का डर न हो। ऐसा विचारकर वह उस स्थान से हटने को ही था कि इतने में उसे अपने सिर के पास बैठा हुआ एक सर्प दिखाई दिया। वह सर्प मुख खोल उसकी ओर झपटने ही वाला था। वह बेचारा वहाँ से भी निराश हुआ, इसलिये मुँह उठाकर ऊपर देखने लगा। शायद ऊपर से निकल जाने का मार्ग हो। पर ज्योंही उसने मुँह ऊचा किया, ऊपर से शहद का एक बूँद उसके मुँह में आ गिरा, क्योंकि ऊपर मधु-मक्खियों का एक छत्ता था। मुँह में शहद टपकते ही उस सरदार की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उसे मृत्यु और कष्ट का भय बिल्कुल जाता रहा। वह अभी इसी चिन्ता में था कि उधर चूहे ने जड़ को काट दिया जिससे वह सरदार धम्म से गिर पड़ा और सर्प ने उसे डस लिया।

यह तो हुआ दृष्टान्त। अब इसके अर्थ पर ध्यान दीजिये। वह सरदार जिसके भय से भागा वह तो मृत्यु है, वृक्ष उसकी आयु थी और सर्प को स्वयं यमराज ही समझिये, वे दोनों शुक्ल-कृष्ण चूहे रात और दिन के द्योतक हैं। जिस प्रकार वह सरदार अपने शत्रु से जान लेकर भागा, उसी प्रकार संसार में मनुष्य अपनी मृत्यु से बचने का उद्योग किया करता है। वृक्षरूपी मनुष्य की आयु को रात-दिन-रूपी काले और सफ़ेद चूहे निरंतर काटा करते हैं। सिर पर सर्प-रूपी यमराज सदैव ताक लगाये खड़ा रहता है और जब मनुष्य की आयु पूरी हो जाती है, झट यमराज महोदय स्वागत करने को आ सामने खड़े हो जाते हैं। ऊपर से शहद का बूँद जो उस

सरदार के मुँह में आ पड़ी थी, माया थी। मनुष्य इसी माया के लोभ में पड़ अपनी मृत्यु को भी भूल जाता है, परन्तु यह तो स्वाभाविक सिद्धान्त है। चाहे संसार की सब बातें अपने नियमों के विपरीत हो जायँ तो भी मृत्यु का अटल नियम कभी भी नहीं टल सकता। क्योंकि मृत्यु-लोक का यह स्वयं सिद्ध नियम है कि जो जन्मता है वह मरने के ही लिये इसलिये जो उस विचित्र ज्ञान के ज्ञाता है वे माया के झंझटों से विरक्त होकर मृत्यु के स्वागत के लिये सदैव बद्ध-परिकर रहते हैं।

३७–प्रत्युपकार

एक सिंह के पैर में काँटा गड़ गया था, इसलिये उसका चलना-फिरना दूभर हो गया। संयोग से एक गड़रिया उधर से आ निकला। सिंह गड़रिया को देख म्लान मुख से उसके सामने जा खड़ा हुआ और इस भाव से उसको देखने लगा कि मानो वह गड़रिया से मदद चाहता है। गड़रिया शेर का मतलब समझ गया और धीरे से उसके पैर का काँटा निकाल दिया। कुछ दिनों के बाद उस गड़रिये पर वहाँ का राजा किसी बात पर बड़ा अप्रसन्न हुआ और आज्ञा दी कि इसके ऊपर जङ्गली शेर छोड़ दिया जाय। संयोग से ऐसा हुआ कि वही शेर जंगल से पकड़ आया। जब राजा की आज्ञा से उस गड़रिये के ऊपर शेर छोड़ा गया, तो शेर चिंघाड़ता हुआ झपटा; परन्तु समीप जाते ही उसने गड़रिया को पहिचान लिया और उसके आगे खड़ा होकर कुत्ते की तरह दुम हिलाने लगा। यह दृश्य देख सभी दर्शक राजा-समेत आश्चर्य में आ गये, पर

छोटे से कहा "जाओ और मेरी ससुराल से अपनी भावज को बुला लाओ। मगर देखना, बात-चीत ठिकाने के साथ करना। कहीं ऐसा न हो कि हाँ के स्थान पर नहीं और नहीं के स्थान पर हाँ कहना।" यह सुनकर छोटे भाई ने क्रोध से कहा—"वाह, आप क्या कहते हैं? क्या मुझे हाँ-नहीं का ज्ञान नहीं है?" बड़े भाई ने कहा—"अरे, यह मैं कब कहता हूँ कि तुझे ज्ञान नहीं है; परन्तु मेरा कहना यह है कि इनका प्रयोग यथा स्थान करना।" छोटे भाई ने समझा, कि यह कहते हैं कि इनका प्रयोग क्रमानुसार करना। इसलिये वे एक कागज पर 'हाँ-नहीं' सिलसिलेवार लिखकर भावज को विदा कराने चले। रास्ते में इन्होंने 'हाँ-नहीं' का अभ्यास भी खूब किया। जब ये भाई की ससुराल पहुँचे, तो ससुरजी ने पूछा—"कहिये, गाँव के सब लोग अच्छे हैं?" इन्होंने कहा—"हाँ।" तब ससुरजी ने पूछा—"आपके भाई साहब मजे में हैं?" इन्होंने कहा—"नहीं।" तब ससुरजी ने पूछा—"क्या वे बीमार हैं?" इन्होंने कहा—"हाँ।" ससुरजी बोले—"क्या दवा होती है?" इन्होंने कहा—"नहीं।" तब ससुरजी ने पूछा—"क्या बहुत बीमार हैं?" उत्तर में इन्होंने कहा—"हाँ।" तब ससुरजी घबड़ाये और बोले—"बचने की उम्मेद है या नहीं?" इन्होंने कहा—"नहीं।" ससुरजी ने फिर पूछा—"क्या वे इतने सख्त बीमार हैं?" इन्होंने उत्तर दिया—"हाँ।" तब तो ससुर आतुर होकर बोले—"क्या वे मौजूद हैं?" उत्तर मिला—"नहीं।" इतना सुनना था कि घर में रोना-पीटना मच गया; क्योंकि उनको मालूम हो गया कि वे अब जिन्दा नहीं रहे। प्रातःकाल जब आप चलने लगे, तो इन्होंने ससुरजी से भावज को विदा करने के लिये कहा। उत्तर में रोते हुए ससुर ने कहा—"अब वह यहाँ ही रहेगी, तो दो-चार

दिन और रहने दीजिये। बाद को हम आप ही पहुँचा देंगे।" ससुरालवालों का यह उत्तर सुन आप अपने घर वापस चले गये। वहाँ भाई ने पूछा—"क्या भावज को लिवा लाये?" यह सुनकर आप कहते हैं कि वह तो राँड हो गई। भाई ने कहा—"क्या भावज राँड हो गई? अभी तो हम मौजूद ही हैं, फिर वह राँड कैसे हो गई?" अब तो इनसे रहा न गया। क्रोध से लाल-लाल आँखें कर कहने लगे—"वाह, क्या तुम कहीं के नाहर हो, जो वह राँड न होती? तुम बने ही रहे, माँ राँड हो गई; तुम बने ही रहे, बुआ राँड हो गई; तुम बने ही रहे, बहिन राँड हो गई; तुम बने ही रहे, चाची राँड हो गई; फिर तुम भावज को राँड होने से क्योंकर रोक सकते हो?" बड़े भाई ने पूछा—"भाई, बताओ तो वहाँ क्या-क्या बात हुई?" इसके उत्तर में उन्होंने ससुराल का सारा कच्चा चिट्ठा सच-सच कह सुनाया। अब तो बड़े भाई को इस गूढ़ विषय का रहस्य भली-भाँति मालूम हो गया और ससुराल जाकर उन्होंने लोगों को शान्ति दी। सच है—बुद्धिहीन मनुष्य क्या नहीं कर सकता।

४०—छल का फल

गंगा के किनारे किसी नगर में एक मौनी सन्यासी बहुत से सन्यासियों के समेत एक मठ में रहता था और भीख माँग-कर अपने उदर की पूर्ति करता। एक समय वह मौनी किसी बनिये के घर भिक्षा लेने को गया। वहाँ भीतर से बनिये की अविवाहिता युवा पुत्री भिक्षा देने को निकली। उसे देख वह मौनी साधू उसकी अनुपम सुन्दरता पर मुग्ध हो गया और

कामासक्त होकर 'हाय ! हाय !!' करके चिल्ला उठा। अंत में किसी तरह राम-राम करते भिक्षा ले मठ में पहुँचा। दूसरे दिन बनिये ने एकान्त में जाकर मुनि से पूछा—"महाराज ! आपने हमारे द्वार पर भिक्षा लेते समय अपने मौन व्रत को क्योंकर छोड़ा ?" उत्तर में मौनी ने कहा—"बचा ! तुम्हारी कन्या चाण्डालिनी है। जब उसका व्याह होगा, तो तुम्हारे कुटुम्ब का सर्वनाश हो जायगा। यही देख मेरे मुँह से शोक-सूचक शब्द निकल पड़ा।" अब तो बनियाराम की बाई पच गई और हाथ जोड़कर बोले—"महाराज ! तो इसका कोई उचित प्रबन्ध करके मेरी रक्षा कीजिये।" साधूजी बोले—"हाँ, उपाय तो बड़ा सहल है। यदि तुम उसे एक संदूक में जीते-जी बन्द कर और ऊपर से एक दीपक जला-कर नदी में त्याग दो, तो अवश्य तुम इस सर्वनाश से बच सकते हो ?" आज्ञानुसार बनिये ने सचमुच अपनी कन्या को एक संदूक में बन्द करके गंगा में बहा दिया। ठीक है—डरपोक और अज्ञान आदमी क्या नहीं कर सकता।

इधर तो उसने अपनी प्यारी कन्या को इस तरह से नदी में बहा दिया। उधर उस धूर्त ने अपने शिष्यों से यह कहा कि तुम सब आज रात को गंगाजी के किनारे जाकर बैठे रहो। वहाँ एक बहती हुई सन्दूक आवेगी, जिस पर कि एक दीपक जलता हुआ होगा। तुम लोग उसे निकालकर ले आना। अगर भीतर से कोई शब्द भी सुनाई दे, तो भी उसे न खोलना; क्योंकि उसे लेकर मैं अपना एक मंत्र सिद्ध करूँगा। इस आज्ञा को पाकर शिष्य सब नदी के किनारे जाकर उस संदूक की प्रतीक्षा करने लगे। इसी बीच में वहाँ के राजा को यह खबर मालूम हो गई। इसलिये उसने बीच से ही

संदूक को निकलवा लिया और उस कन्या को निकाल उसमें एक बंदर को बंद करके ज्यों का त्यों नदी में छोड़वा दिया। जब वह बहती हुई संदूक शिष्यों के पास जा पहुंची तो शिष्यों ने उसे निकाल लिया और मठ में ले जाकर उस धूर्ताधिराज को दे दिया। वह धूर्त संदूक पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ और एकान्त में ले जाकर खोलने का प्रबन्ध करने लगा। परन्तु संदूक के खोलते ही उसके भीतर से एक बड़ा विकराल बंदर निकला और क्रोध से उसके नाक-कान काट लिये। बंदर ने इतना ही नहीं किया बल्कि मुनि महाराज के प्रत्येक अङ्गों को खूब नोचा। साधू महाराज रोते हुए भाग निकले। जब यह समाचार चेलों को मालूम हुआ, तो बड़ी हँसी हुई। सच है छल का ऐसा ही फल मिलता है। जो अपने सुखों के लिये दूसरे से छल करता है उसकी भी वैसी ही दुर्दशा होती है, जैसी कि इस साधु की हुई।

— आत्मानन्द विचारेण परतश्छद्मयश्चरेत
स एवं दुःखं लभ्येत यथा संन्यासिना कृतम् ॥

४१—वैद्यराज

एक वैद्यजी एक रोगी को देखने गये और उनके साथ उनका एक मूर्ख शिष्य भी था। वैद्यजी ज्योंही रोगी के पास पहुंचे उन्हें चने के छिलके इधर-उधर पड़े दीख पड़े। अब तो वैद्यजी इस बदपरहेजी पर चिढ़कर बोले—"जब आपको चने ही खाना है, तो व्यर्थ दवा क्यों करते हैं?" रोगी ने हाथ जोड़कर कहा—"वैद्यजी, जी बहुत चाहता था, इसलिये दो गाल चने चवा लिये। इसे क्षमा कीजिये। आगे फिर चना नहीं

लाऊँगा।" कुछ देर बाद वैद्यजी घर लौटे। रास्ते में उनके शिष्य ने पूछा—"महाराज ! आपको यह कैसे मालूम हुआ था कि इस रोगी ने चना खा लिया है ?" वैद्यजी ने कहा—"चनों के छिलके उसकी चारपाई के नीचे बिखरे हुए पड़े थे; इसलिये ऐसा कह दिया।" दूसरे दिन जब उस रोगी के घर के मनुष्य फिर वैद्यजी को लिवाने गये, तो वैद्यजी ने जाने से इन्कार कर दिया; क्योंकि वे पहिले से बदपरहेजी से चिढ़े हुए थे। परन्तु बहुत कहने-सुनने पर इन्होंने अपने शिष्य को भेजा और कह दिया कि आज तुम्हीं जाकर देख आओ। गुरु की आज्ञा पा वैद्यराज महोदय रोगी के घर पहुँचे और चारपाई के नजदीक कम्मलों को देखकर बोले—"ओहो ! आज तो इसने कम्मल खा लिया है।" घर के लोगों ने उसे पागल समझकर निकाल दिया।

इसी तरह एक बार फिर दोनों गुरु-शिष्य कहीं जा रहे थे। रास्ते में कुछ लोग एक ऊँट को घेरे हुए खड़े मिले। वैद्यजी ने पूछा—"यहाँ क्या हो रहा है ?" लोगों ने उत्तर दिया कि यह ऊँट खरबूजा खा रहा था। दैवयोग से एक खरबूजा उसके गले में अटक गया है। इसलिये अब वह मर रहा है। वैद्यजी ने कहा—"अगर आप लोग मुझे कुछ इनाम दें, तो मैं इस ऊँट को अच्छा कर दूँ।" ऊँट के मालिक ने स्वीकार कर लिया। वैद्यजी ने उस ऊँट को जमीन पर सुलाकर उसके गले पर एक ऐसी लात मारी कि खरबूजा फूट गया, जिससे ऊँट भली-भाँति निरोग हो गया। अब क्या था, वैद्यजी की बड़ी आवभगत हुई और उनको बहुत सा इनाम मिला। कुछ दिनों बाद शिष्य महाराज अपनी विद्या समाप्त कर वैद्यराज हो गये और दवा करने के लिये चले।

रास्ते में एक आदमी मिला, जिसका गला फूल गया था अर्थात् उसको घेघा हो गया था। वैद्यराज ने उनसे कहा—"यदि आप मुझे कुछ इनाम दें, तो मैं इस रोग को अच्छा कर दूँ।" उस आदमी ने कहा—"अच्छी बात है। आप मुझे निरोग कर दें तो मैं आपको बहुत सा धन दूँगा।" अब क्या था, वैद्यराज महोदय उसको भूमि में सुलाकर पैरों से उसके गले को दबाने लगे। दबाते-दबाते उस रोगी की साँस रुक गई और वह सदा के लिये सो गया। रोगी के घरवालों ने पुलिस में सूचना दे दी और बात की बात में वैद्यराजजी पकड़ लिये गये। सरकार की ओर से उन पर मुक़दमा चलाया गया और अन्त में उनको फाँसी की सज़ा हुई।

अमन्त्रणमक्षरं नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्य पुरुषो नास्ति योजकास्तत्र दुर्लभाः॥

भारतवर्ष में ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं। कोई तो देखा-देखी लीडर बन जाता है, तो कोई नोटिस देकर वैद्यराज बन जाता है। कोई मूर्ख महामहोपाध्याय होकर भी सम्पादकीय करने लग जाता है। तो भला आप ही कहिये, भारत का सुधार कैसे हो सकता है? मैं तो यह दावे के साथ कहने को तैयार हूँ कि कोई भी ऐसी श्रेणी नहीं बची है कि जिसमें ऐसे-ऐसे नक़लबाज़ महाशयों का समावेश न हुआ हो। परमात्मा से प्रार्थना है कि वे इनको सुबुद्धि दें, जिससे कि वे वास्तव में भारत का उपकार कर सकें। पाठकों को भी ऐसे मनुष्यों से सदा बचते रहना चाहिये।

४२—सभी एक हैं

एक किसान अपने खेत को नहर की नाली से सींच रहा था। यह देख किसी मरुवासी ने पूछा—"भाई! आजकल वर्षा ऋतु तो नहीं है; फिर यह पानी कहाँ से आता है?" किसान ने उत्तर दिया कि यह जल इस छोटे से बम्बे में होकर आता है। मरुवासी ने फिर पूछा—"इस बम्बे में जल कहाँ से आया?" उत्तर में किसान ने कहा—"भाई! यह जल बड़े बम्बे में से आता है।" मरुवासी ने फिर पूछा—"बड़े बम्बे में जल कहाँ से आता है?" किसान ने कहा—"नहर से।" मरुवासी ने फिर पूछा—"और नहर में जल कहाँ से आता है?" किसान ने उत्तर दिया—"गंगा नदी से।" मरुवासी ने फिर पूछा—"और गंगा में जल कहाँ से आता है?" तब किसान ने कहा—"हिमालय पर्वत से।" मरुवासी ने अन्त में कहा—"लो भाई! तुमने पहले ही क्यों न कह दिया कि यह जल हिमालय पर्वत से आता है।"

यह तो हुआ दृष्टान्त, अब इसके दार्ष्टान्त पर ध्यान दीजिये—जिस प्रकार सभी नदी-नालों में हिमालय से ही जल आता है और सभी जल एक हैं; ठीक उसी प्रकार संसार में जितने मत-मतान्तर फैले हुए हैं, सभी एक हैं और उनका निकास-स्थान वेद ही है। परन्तु जिस प्रकार शुद्ध जल भी अशुद्ध पात्र में रखने से अशुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार वेद की बातें भी मूर्खों की समझ में अशुद्ध जान पड़ती हैं।

इसका दूसरा भाव यह भी है कि सभी मनुष्य एक हैं। संसार-भर के सभी मनुष्य चाहे गोरे हों या काले, ईसाई हों या पादरी, हिन्दू हों या मुसलमान, सनातनधर्मी हों या

आर्यसमाजी ; सभी एक हैं और सबका बनानेवाला वही एक अन्तर्यामी घट-घटवासी जगत्-पिता परमात्मा ही है। इस-लिये परस्पर भेद-भाव रखना नितान्त अज्ञानता है। सभी जातियों का, सभी मतों का और संसार के प्रत्येक मनुष्य का एक ही अभिप्राय है। सबका लक्ष्य एक है और एक ही स्थान पर पहुँचना चाहते हैं; परन्तु मार्ग सब का अलग-अलग है। कोई सीधे मार्ग पर है, तो कोई बहुत दूर टेढ़े मार्ग से होकर जा रहा है। वे लोग यह नहीं जानते कि वेद ही सच्चा पथ-प्रदर्शक है। जो उसके सहारे जा रहा है, चाहे वह किसी भी मत का क्यों न हो, किसी जाति का क्यों न हो, किसी देश का क्यों न हो; अवश्य अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँच सकता है। अनेक भिन्न-भिन्न मार्गों को देख कभी-कभी लोगों को भ्रम हो जाया करता है कि किस मार्ग पर चलें, कौन सा रास्ता हमारे लिये ठीक है। उनसे हमारी यही प्रार्थना है कि केवल वेद ही का अवलम्ब लें और जिस मत में वेद पर ही विश्वास किया जाता है, उसी को अपनावें। ऐसा करने से वे अवश्य अपने अभीष्ट को पूर्ण कर सकते हैं। यथा

वेद प्रविष्टेन मार्गेण अच्छता शुभम्।

४३—अब के न तब के

एक बार अकबर ने बीरबल से कहा कि तुम तीन ऐसे मनुष्यों को लाओ, जिनमें से पहिला तब का हो, दूसरा अब का हो और तीसरा न अब का हो न तब का हो। बीरबल इस आज्ञा को सुन पहले तो बहुत बड़ी चिन्ता में पड़ा, फिर कुछ देर विचारने के उपरान्त उसकी समझ में यही बात आ गई और

एक सप्ताह की छुट्टी लेकर घर गया। नियत समय पर वह अपने साथ एक अमीर, एक फ़क़ीर और एक रंडी को साथ में लेकर सभा में हाज़िर हुआ। अकबर ने पूछा—"क्या तीनों आदमी आ गये?" बीरबल ने कहा—"हाँ।" तब बादशाह ने उनको पेश करने की आज्ञा दी। बीरबल ने झट आज्ञा पाते ही उन तीनों को सामने खड़ा किया और कहा—"महाराज! यही तीनों आदमी हैं।" अकबर बादशाह ने कहा—"तुम अपने जवाबों को सभा के बीच सब के सामने बयान करो।" आज्ञा पाते ही बीरबल ने कहा—"महाराज! यह जो अमीर साहब आपके सामने खड़े हैं, यही तब के हैं अर्थात् इन्होंने पूर्व जन्म में अच्छा कर्म किया था, जिसके बदले आज सुख कर रहे हैं। यह फ़क़ीर महाराज अब के हैं, जो आजकल तो कठिन तपस्या कर रहे हैं, परन्तु इसके बदले आगे सुख प्राप्त करेंगे। यह रंडी आपके सम्मुख खड़ी है, यह न अब की है न तब की है; क्योंकि पूर्व जन्म में भी इसने कुछ धर्म नहीं किया, जिसके फल से इसके मन में अधर्म समा रहा है तथा जगत् में निन्दा का पात्र बन रही है। फिर भी यह अपने कर्मों को नहीं सुधारती है और अपने को अधर्म में तथा पाप में लिप्त किये रहती है। जब इसके ऐसे ही कर्म हैं तो अगले जन्म में भी सुख पाना तो दूर रहा, मनुष्य-योनि में जन्मना भी असम्भव ही है। ठीक है—शास्त्र में यह साफ़ लिखा हुआ है—

धर्मार्थ काम मोक्षाणां यस्य कोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥

४४-भेड़ियाधसान

यह संसार असार है, साथ ही भेड़ियाधसान भी है। जिस प्रकार भेड़ एक के पीछे एक चलती है, उसी प्रकार मनुष्य भी देखा ही देखी करता है और तत्व का अर्थ नहीं जानता अर्थात् केवल अपने प्रयोजन से ही काम रखता है। एक वार एक ब्राह्मण महाराज तीर्थ-यात्रा को चले। वहाँ उन्होंने वड़ी भीड़ देखकर अपना ताम्र-कमंडलु मिट्टी में एक स्थान पर गाड़ दिया और पहिचान के लिये ऊपर से एक मिट्टी का ढेर लगा दिया। पीछे से भी वहुत से आदमी आ रहे थे। उन्होंने यह देख मन में सोचा कि पण्डितजी ने इस स्थान पर मिट्टी का ढेर क्यों लगाया? मालूम होता है कि इसका बड़ा महात्म्य है। फिर क्या पूछना था, सभी लोगों ने एक दूसरे की देखा-देखी मिट्टी का ढेर लगाना आरम्भ किया। जब पण्डितजी लौटकर आये और अपना कमंडलु खोजने लगे, तो उनको मालूम हुआ कि उस स्थान पर एक के जगह हजारों नहीं वरन् लाखों मिट्टी के ढेर बने हुए हैं। तव तो पंडितजी पछताकर कहने लगे—

गतानुगतिको लोको नायं तत्त्वार्थ चिन्तकः।
घट पुंज प्रभावेण गतं वै ताम्रभाजनम्॥

४५-सर्व-संग्रह

एक दरिद्र की स्त्री वड़ी ही चतुर थी। उसने सभी तरह की चीजों का संग्रह किया था। यहाँ तक कि उसके घर के ऊपर छत पर काँटे पड़े रहते थे। एक दिन उसको एक घड़े के

भीतर सर्प बन्द मिला। उसने उसे भी लेकर अपनी सन्दूक़ में बन्द कर दिया था। एक समय की बात है कि एक राजा की रानी अपने नौलखे हार को घाट पर रख बावली में स्नान कर रही थी। संयोग से वहाँ एक उड़ती हुई चील आ निकली और उस नौलखे हार को लेकर उड़ गई। उड़ते-उड़ते वह उसी दरिद्र की छत पर आ बैठी। वहाँ तो पहिले ही से काँटे बिछ रहे थे, इसलिये वह उसमें फँस गई। जब उस औरत ने यह देखा तो चील को उड़ा दिया और ईश्वर की दया समझ हार को ले लिया। अब क्या था! जहाँ भोजन का भी प्रबन्ध मुश्किल से होता था वहाँ पक्की हवेली बन गई। ठीक है—मनुष्य की दशा सर्वदा एक सी नहीं रहती। उसकी इस बढ़ती को देखकर गाँववाले जल गये और उसके सर्वनाश का उपाय सोचने लगे। अंत में लोगों ने विचारकर एक चोर को उसके घर चोरी करने को भेजा। रात का समय था। चोर घर में घुस इधर-उधर टटोलने लगा। इतने में उसके हाथ सन्दूक लग गई और वह झट उसे खोलने लगा। अंधियारे में सन्दूक खोल घड़े में हाथ डाल दिया। अब क्या था, उसी भूखे सर्प ने उसको ऐसा काटा कि चोरराम वहीं सुन्न हो गये। सवेरा होने पर जब लोगों को यह मालूम हुआ, तो वे बड़े चकित हुए और पहले जिसको पागल कहा करते थे, उसी की प्रशंसा करने लगे। ठीक है—

"सर्व संग्रह कर्त्तव्यः ववकाले फलदायकः।"

एक भाषा के कवि ने क्या ही अच्छा कहा है—

सकल वस्तु संग्रह करो, आवे कौनेउँ काम।
समय पड़े पै ना मिले, माटी खरचे दाम॥

४६—खोपड़ी

एक बार सिकंदर बादशाह एक सिद्ध योगी से मिले और उन्होंने उनकी बड़ी सेवा की। योगीजी प्रसन्न होकर बोले—"बेटा सिकंदर! कुछ माँग?" यह सुनकर सिकंदर ने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो ऐसा वरदान दीजिये कि मैं सातों द्वीपों और नवों खंडों का बादशाह हो जाऊं।" सिद्ध ने कहा—"अरे, इसे क्या माँगता है? क्या तुझे संसार में सदा जीना है? अपनी मुक्ति क्यों नहीं माँगता? अपने को संसार के बन्धनों से अलग होने का वरदान क्यों नहीं माँगता? तुम इन असार वस्तुओं पर क्यों इतने मुग्ध हो रहे हो?" यद्यपि योगी ने उसको बहुत समझाया; परन्तु उसकी समझ में एक भी बात न आई। निदान हारकर योगी ने सिकंदर से कहा—"अच्छा, अगर तुम मेरी इस खोपड़ी को अन्न से भर दो, तो अवश्य तुम तीनों लोकों के स्वामी हो सकते हो।" यह कहकर उस योगी ने एक खोपड़ी को सिकंदर के आगे रख दिया। सिकंदर ने सोचा, जब यह हमको इतना भारी वरदान देते हैं, तो मैं इनके बर्तन को अन्न से क्यों भरूं? रत्न-जवाहिरातों से क्यों न भरूं! ऐसा विचारकर उन्होंने अपने सेवकों को आज्ञा दी कि रत्नादि से यह खोपड़ी भर दिया जाय। आज्ञा की देर थी; रत्न, जवाहिर, हीरे और माणिक आदि उसमें डाले जाने लगे; पर यह क्या? सिकंदर का सारा कोष खाली हो गया, परन्तु फिर भी योगी की वह खोपड़ी न भरी। अब तो सिकंदर के होश पैतरे बदलने लगे। अन्त में योगी की महिमा जान उसके पैरों पर गिर पड़ा। योगी ने सिकंदर को उठाकर कहा—"बेटा! यह मेरी करामात नहीं है। यह आदमी की खोपड़ी है, अगर इसमें संसार-भर की

सारी वस्तुएँ भी डाली जायं तो भी नहीं भर सकती है। तुमको इतने भारी बादशाह होने पर भी संतोष नहीं है, तो फिर सारा भूमंडल भी मिल जायगा तो भी संतोष न होगा। तुम्हारी यह खोपड़ी कभी न भरेगी।" सिकंदर यह सुनकर चुप हो रहा। सच है—

नहिं धन धन है परम धन, तोषहिं कहहिं प्रवीन।
बिन संतोष कुबेरहू, दारिद दीन मलीन॥

४७—चतुर मंत्री

सर्वेभ्यश्चैव ज्ञानेभ्यो वार्ताज्ञानं महत्तमम्।
यथैव स्वामिनं भृत्यो वार्तादक्षो ह्यतोषयत्॥

ठीक है, सभी ज्ञानों से बढ़कर चतुरता है और मुख्य ज्ञान हाजिरजवाबी है। जो मनुष्य अवसर देखकर ठीक-ठीक उत्तर देता है, वही सबसे बढ़कर ज्ञानवान है।

एक समय एक बादशाह ने मंत्री से कहा कि हमारे लिये एक धुएँ की कोठरी बनवा दो। कल इसको बनवाकर ठीक-ठीक कर दो, नहीं तो तुम्हें प्राण-दंड दिया जायगा। मंत्री शोक-पूर्वक पछताता हुआ अपने घर गया। उसे उदास देख उसकी पुत्री ने पूछा—"पिताजी! आप चिंतित क्यों दीख पड़ते हैं?" मंत्री ने अपनी कन्या से उत्तर में सारा वृत्तान्त साफ-साफ कह सुनाया। यह सुनकर मंत्री की कन्या ने कहा—"पिताजी! घबड़ाने की कोई बात नहीं। कल जाकर आप बादशाह से यह कहिये कि जहाँपनाह, यदि मुझे बीस मन धुआँ मिल सके तो मैं बात की बात में कोठरी तैयार किये देता हूँ।" पुत्री की बात मंत्री

की समझ में आ गई और दूसरे दिन पूर्ववत् दरबार में हाज़िर हुआ। बादशाह ने पूछा—"क्यों जी, कोठरी बनाने का प्रबन्ध हुआ?" मंत्री ने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज, मैं तैयार हूँ; किन्तु मुझे बीस मन धुआँ तोलकर दे दिया जाय, तो मैं कोठरी बनाने का प्रबन्ध करूँ।"

बादशाह इस अकाट्य उत्तर को सुनकर चुप हो रहा। मंत्री की इस चतुरता पर प्रसन्न होकर उसे बड़ा भारी पद दिया। सच है—बुद्धि से क्या नहीं हो सकता?

४८—मिलनेवाला मिलता ही है

कर्मानुसार जो भाग्य में लिखा रहता है वह अवश्य मिलता है। इस विषय में फ़ारसी के एक कवि का क्या ही अच्छा भाव है—

मक़सूम का जो है वह पहुँचेगा आप से।
फैलाइये न हाथ न दामन पसारिये॥

संसार में इसी विषय की एक कहावत भी है कि एक पंडित कहीं किसी राजा के पास जाकर कथा सुनाने लगे। राजा ने पूछा—"पंडितजी! मैं आपके लिये क्या दक्षिणा चढ़ाऊँ?" उत्तर में ब्राह्मण ने कहा—"महाराज! इसकी कुछ बात नहीं है। जो कुछ मेरे भाग्य में होगा आप ही मिल जायगा।" राजा ब्राह्मण की इन बातों को सुनकर बड़ा क्रोधित हुआ और कथा के समाप्त होने पर उन्होंने कथा पर एक रुपया ही चढ़ाया। ब्राह्मण कुछ न बोला और उस एक रुपये को ले जाकर मोदी को दे दिया। कथा बाँचते समय

उस ब्राह्मण ने मोदी से उधार पाँच रुपये का अन्न खाया था, इसलिए ब्राह्मण ने सारा सच्चा वृत्तान्त बनिये से कहकर अपना पोथी-पत्रा रखा लेने को कहा। किन्तु बनिया भी बड़ा धर्मी था। उसने कहा—"महाराज! इसमें आपका कोई दोष नहीं है, इसलिये चिन्ता मत कीजिये। आज हमारे यहाँ भोजन कीजिये और कथा कहिए। मैं स्वयं इन पाँच रुपयों को बढ़ा दूंगा।" ब्राह्मण देवता ने इस बात को मान लिया और वहीं भोजन बनाने लगे। बनिए ने अपने नौकर को बाज़ार से तरकारी लाने को भेजा। इधर राजा को पछतावा हुआ कि मैंने कथा में केवल एक ही रुपया दिया है, इसलिए प्रायश्चित्त-स्वरूप उन्होंने एक लौकी में १०० अशर्फियाँ भरकर उसे एक ग़रीब ब्राह्मण को गुप्तदान दे दिया। जब वह ब्राह्मण घर पहुँचा, तो उसकी स्त्री ने रुष्ट होकर कहा—"आप यह कहाँ से लिये आते हैं? कहीं से इसके बदले कुछ अन्न ले आइए, जिससे भूक मिटे।" स्त्री की बात सुन ब्राह्मण देवता उस लौकी को बेचने चले। रास्ते में संयोग से उस बनिये का नौकर मिला। नौकर ने पूछा—"कहिए ब्राह्मण देवता! इस लौकी को बेचिएगा?" ब्राह्मण ने कहा—"हाँ।" अब क्या था, नौकर ने एक पैसे में उसे खरीद लिया और ले जाकर पंडितजी को दे दिया। पंडितजी जब उसे बनाने लगे, तो उसमें से १०० अशर्फियाँ निकलीं। पंडितजी ने बाँध लिया। दूसरे दिन फिर वही दरिद्र ब्राह्मण राजा के द्वार पर जा भिक्षा माँगने लगा। राजा ने पहचानकर पूछा—"क्यों, लौकी कैसी बनी थी?" ब्राह्मण ने कहा—"महाराज! मैंने तो उसे स्त्री के कहने पर अन्न के लालच से बनिये के नौकर के हाथ एक पैसे में बेच दिया।" राजा पता लगाने लगे। जब उनको सारा वृत्तान्त मालूम हुआ-

तो उन्होंने पंडितजी को बुलाकर पूछा कि क्या माजरा है? पंडितजी ने उत्तर में एक श्लोक कहा—

"स्वकर्म विहितं द्रव्यं समायात्य प्रदत्तकम् ।
राजा श्रुत्वा कथां मुद्रा मात्रतादाद्धनं महत् ॥"

राजा यह सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने फिर पंडितजी को सौ अशर्फियाँ दीं। सच है, मिलनेवाला अवश्य ही मिलता है।

४६—मूर्ख रोगी

एक मनुष्य ज्वर से पीड़ित था। एक दिन वह अपने घर में बैठकर आग ताप रहा था। पास में रक्खे हुए किसी जल के कटोरे में एक अङ्गार गिरकर बुझ गया और अति शीतल हो गया। उस मूर्ख ने यह अनुमान किया कि जिस तरह यह गर्म और जलता हुआ अङ्गार जल में गिरकर शीतल हो गया, उसी प्रकार मेरा यह ज्वर से तापित तप्त शरीर भी पानी में डुबोने से शीतल हो जायगा और मैं आराम हो जाऊँगा। यह सोचकर वह अपनी स्त्री से बोला कि नहाने के घड़े में पानी भर दो। स्त्री ने वैसा ही किया। फिर वह मनुष्य उस हौज़ के भीतर जाकर बैठ गया। इससे शरीर का शीतल होना तो दूर रहा, उसे सन्निपात ने आ घेरा। वैद्य बुलाया गया। उस वैद्य ने रोगी से पूछा—"क्या हुआ?" रोगी ने टूटी-फूटी भाषा में अपनी सारी कथा कह सुनाई; पर अब मरे पर वैद्य क्या कर सकता था? अंत में रोगीजी आँख मूँदकर चल बसे। यह देख वैद्य ने

कहा—"हाय, मूर्ख लोगों के भी अनुमान कैसे विलक्षण होते हैं। उनके अनुमान ही उनकी मृत्यु के कारण बनते हैं।"

५०—साहब और नौकर

एक अङ्गरेज बहादुर अपने नौकर से क्रोधित होकर गालियाँ देते हुए बोले—"यू, डैम, फूल !" अर्थात् गधे का बच्चा।

नौकर ने डरते हुए कहा—"हुजूर ! माँ बाप।"

५१—भाग्यवादी और उद्योगवादी

एक राजा ने अपने मंत्री से पूछा—"क्या आप भाग्य पर भरोसा रखते हैं ?" मंत्री ने उत्तर दिया—"महाराज ! हाँ।" राजा ने पूछा—"क्या आप इसको सिद्ध कर सकते हैं ?" तब मंत्री ने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज ! जब श्रीमान् की यही आज्ञा है तो सेवक अपने इस कथन को भली भांति सिद्ध कर सकता है।" इसके अनुसार एक दिन मंत्री ने एक घर खाली करवाकर उसके एक कोने में एक बड़ा सन्दूक़ रखवा दिया और बिना किसीको बतलाये उसमें एक थैली रख दी, जिसमें कुछ मटर और कुछ मोती थे। जब रात हो गई तब उसने दो आदमियों को उस घर में बन्द कर दिया। वे दोनों मनुष्य दो तरह के थे। एक तो तकदीर पर और दूसरा तदबीर पर भरोसा करता था। वह मनुष्य जो कि भाग्य पर भरोसा करता था एक कोने में अपना कम्बल बिछाकर लेट रहा और दूसरा उस अन्धेरे में चारों ओर घूम-घूमकर उस

मकान की चीजों को ध्यान से देखने लगा। टहलते-टहलते जब वह उस सन्दूक के पास पहुँचा, तो उसने सन्दूक खोलकर वह थैली उठा ली। थैली बन्द थी। उसने उसे खोला और भीतर हाथ डालने से उसे मालूम हुआ कि उसमें मटर और गोल-गोल पत्थर हैं। एक-एक करके वह सब मटर तो खा गया और पत्थरों को अपने साथी के बिछौने की ओर फेंकता गया और बोला—"ऐ आलसी ! लो और पड़े-पड़े इन पत्थरों को चबाओ।" वह आदमी जो सो रहा था उन पत्थरों को बटोरता गया।

जब सवेरे राजा और मन्त्री उस स्थल पर पहुँचे तब मंत्री ने उन दोनों से पूछा कि तुम दोनों को यहाँ कौनसी वस्तु मिली है ? परिश्रम पर भरोसा रखनेवाले ने कहा—"महाराज ! मुझे कल रात को मटर ही मिले, जिन्हें मैं चबा गया; और तो कुछ हाथ नहीं लगा।" दूसरा मनुष्य जिसका कि भाग्य पर विश्वास था राजा को पाये हुए अपने पत्थरों को बतलाने चला; पर देखता है तो वे पत्थर नहीं मोती हैं। यह देख मंत्री ने राजा से कहा—"महाराज ! देखिये, भाग्य भी कोई वस्तु है; पर वह मटर के साथ मिले हुए मोतियों के सदृश दुर्लभ और दुष्प्राप्य है। इससे मैं कह सकता हूँ कि—

"कोई न भाग्य पर व्यर्थ रक्खे भरोसा"

५२–दया

एक दिन एक साधु किसी नदी में स्नान कर रहा था। साधु ने देखा कि नदी में एक बिच्छू बहा जा रहा था। बिच्छू उस समय तक जीवित था। साधु को उसकी दशा पर

बड़ी दया आई और उसने बिच्छू को हाथ से उठाकर बाहर रखना चाहा; पर उस कुटिल बिच्छू ने साधु के हाथ में डंक मार दिया। बिच्छू के काटते ही साधु दर्द के कारण विकल हो उठा और उसका हाथ काँप गया, जिससे वह बिच्छू फिर नदी में गिर पड़ा। साधु दयालु था। उसने डंक का कुछ भी ख्याल न करके फिर बिच्छू को उठा लिया और किनारे पर रखना चाहा; परन्तु इस बार भी बिच्छू ने उसे डंक मारा और हाथ से कूदकर नदी में जा गिरा। इसी प्रकार साधु ने कई बार उसे बाहर निकालना चाहा; परन्तु वह बिच्छू अपने स्वभावानुसार उसके हाथ में काट हर बार नदी में गिर पड़ता। नदी के तट पर खड़ा हुआ एक मनुष्य यह सब कौतुक देख रहा था। उसने साधु से कहा—"महात्मन्! जब यह आपके हाथ में डंक मारता है, तो आप इसके बचाने के लिए व्यर्थ क्यों कष्ट करते हैं? उपकार उसी के साथ करना चाहिये जो उस उपकार को माने।" साधु ने उत्तर दिया— "इसमें इसका क्या दोष है। यह तो इसका स्वभाव ही है।" जब यह जड़ जीव होकर भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता, तो मैं मनुष्य होकर अपना स्वभाव क्यों छोड़ दूं? इसका स्वभाव डंक मारना है और मेरा उस पर दया करना है। अगर हम उसके डंक के दुख से उस पर दया न करें, तो आप ही कहिए मेरा ऐसा पतित दूसरा और कौन होगा?"

शिक्षा

इस कहानी से मनुष्य को यह शिक्षा मिलती है कि यदि कोई दुष्ट अपनी मूर्खता से उसके साथ बुरा बर्ताव करता है तो भी उसे उसके साथ अच्छा ही बर्ताव करना चाहिये। देखिये कबीर साहब क्या आज्ञा देते हैं।

जो तूँ को काँटा बुवे, ताहि बोय तू फूल।
तूँ कों फूल के फूल हैं वाको हैं तिरसूल॥

५३—अफ़ीमची की पीनक

एक अफ़ीमची अफ़ीम के नशे में चूर था। उसकी नाक पर मक्खियाँ आ-आकर बैठा करती थीं, इसलिए उसे बड़ा कष्ट होता था। कई बार तो उसने उनको उड़ाने के लिये हाथ उठाया; पर मक्खियों को उड़ा न सका। अब तो उसे बड़ा क्रोध आया। पीनक में तो था ही, झट पाकेट से एक तेज चाकू निकाल बायें हाथ से नाक पकड़ दायें हाथ से उसे काट डाला और बोला—"लो, मैंने तो अड्डा ही उड़ा दिया। अब बैठोगी काहे पर? मैंने तो ऐसा किया कि न रहे बाँस न बजे बाँसुरी।" सच है—दुष्ट लोग दूसरे के दुःख के लिये अपनी ही हानि कर बैठते हैं।

५४—चार प्रश्नों का उत्तर

एक दिन अकबर बादशाह ने बीरबल से कहा—"मुझे चार ऐसे मनुष्य ला दो, जो शूरवीर, कायर, लज्जावान और निर्लज्ज हों।" दूसरे दिन बीरबल एक स्त्री को दरबार में हाज़िर करके कहने लगा—"महाराज! आपकी आज्ञानुसार आदमी उपस्थित है।" बादशाह यह देख चकित हो बोला—"मैंने तो चार मनुष्यों को बुलाया था फिर एक ही को क्यों लाये?" बीरबल ने कहा—"महाराज! इसी एक स्त्री में चारों गुण मौजूद हैं।" बादशाह ने कहा—"कैसे?" बीरबल

ने उत्तर दिया—"जिस समय यह स्त्रियाँ ससुराल में रहती हैं तो मुँह खोलकर बोलती भी नहीं, जब ब्याह-शादी में गाली गाने लगती हैं तो बाप-भाई के सामने भी निर्लज्ज होकर गालियाँ बकती हैं, जब स्वामी के पास रहती हैं तो डर के मारे घर कोठे में भी नहीं जातीं और जब किसी से आँख लग जाती है तो अँधेरी रात में भी निधड़क अपने यार के पास चली जाती हैं।" बादशाह यह सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ और बीरबल को बहुत कुछ इनाम दिया। ठीक है—

शूर भीतं तु लज्जालुं निर्लज्जन्तु तथैव च।
समान येति मंन्युक्तः सर्वाढ्यामानयत् स्त्रियम् ॥

५५—बुढ़ापे का ब्याह

अकबर बादशाह को बुढ़ापे में एक युवा स्त्री पर प्रेम उत्पन्न हुआ, पर वह हाथ नहीं आती थी। और आती ही कैसे—वह युवा थी और यह बुड्ढे थे। अन्त में बादशाह ने बीरबल से कहा—"बीरबल ! इस नवयौवना के साथ मेरा ब्याह करा दो; क्योंकि न मालूम मेरा इस पर प्रेम क्यों इस क़दर हो रहा है? कोई ऐसी युक्ति करो जिससे मेरा उसके साथ ब्याह हो जाय।" बीरबल ने बहुतेरा समझाया कि—बुढ़ापे की शादी और गोबर की आगी—दूसरों के काम आती है। आप ब्याह न करें; क्योंकि आपकी अवस्था गिर चुकी है; किन्तु उनके समझाने का बादशाह पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। अन्त में बीरबल ने सोचा कि किसी दूसरे ढंग से बादशाह के मन को फेरना चाहिये। ऐसा विचारकर बीरबल ने एक सवैया लिख आने-जानेवाले रास्ते में लटका दिया। वह सवैया यह है—

ब्याह की चाव उठे मन माहिं तो पन्द्रह बीस पचीस लौं कीजे।
तीस भये पर कीश बने अरु चालिस पचास में नाम न लीजे॥
काम की वेग उठे तन में करि ज्ञान हृदय मन माहिं रहीजे।
साठ बरीस में जी ललचाय तो निकाल के जूता कपार पै दीजे॥

पर हाय! आज भारत में बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और बहु-विवाहों की धूम मची हुई है। यह इसी का परिणाम है कि देश में विधवाओं की संख्या बढ़ रही है। संतानें निर्बल और अल्पायु हो रही हैं। न उनमें बल है, न बुद्धि है, और न उनमें विचारने को ही कुछ शक्ति है; फिर भी भारत-वासियों की आँखें नहीं खुलतीं। वे अपनी हीनावस्था की ओर ध्यान नहीं देते। मेरी तुच्छ सम्मति में भारत की समस्त बुराइयों की जड़ ये ही तीन विवाह हैं। कहीं तो कन्या की उम्र आठ वर्ष की है; क्योंकि 'अष्टवर्षे भवति गौरी नव वर्षे च रोहिणी' आदि का उदाहरण देते हुए आजकल के पंडित और भी देश की दुर्दशा कर रहे हैं, तो वर की आयु नब्बे से भी ऊपर। इसी विषय को लेकर किसी भजनीक ने यह लिखा है—

साठ बरस के बुढ़ऊ बाबा, बरस आठ की बाला।
योवनवाली बाला जब हो, बुढ़ऊ यमपुर वाला॥

ठीक इसके विपरीत कहीं तो वर की आयु ६ या ७ वर्ष की है, तो कन्या की बीस से ऊपर। अब आप ही कहिये कि कहाँ तक पुरुष-पत्नी का सम्बन्ध ठीक रह सकता है? वहाँ तो स्त्री, पुरुष की माता मालूम होती है। जिस देश में माता के स्तन छुड़ाकर बालकों का ब्याह करनेवाली जातियाँ मौजूद हों, उस देश की रक्षा परमात्मा ही करें। मेरी परमात्मा से यही प्रार्थना है कि वह देश-वासियों को सुबुद्धि दें, जिससे

सभी जातियाँ, सभी सम्प्रदाय और सभी फ़िरक़े मिलकर इन कुप्रथाओं को दूर करें, जिससे हम फिर पूर्व-दशा को प्राप्त कर सकें।

५६—फूट

एक जंगल में तीन साँड साथ ही साथ चरा करते थे और रात को एक ही स्थान पर सोते थे। परस्पर उनमें इतना प्रेम था कि घड़ी दो घड़ी भी एक दूसरे से अलग न रहते। जिस जंगल में यह रहते थे उसी जंगल में एक बड़ा सिंह भी रहता था। वह इन साँड़ों को दूर से देखता और चाहता कि किसी तरह इनको मारकर खा जाय; परन्तु वे तीनों सदा एक साथ ही रहते थे, इसलिये सिंह को उनके मारने का साहस न होता था। एक दिन एक चालाक लोमड़ी सिंह के पास जाकर कहने लगी—"आप इतना उदास क्यों हैं।" सिंह ने अपने मन का सारा वृत्तान्त कह दिया। लोमड़ी की जाति ही बड़ी चालाक हुआ करती है। वह सिंह से बोली—"आप घबड़ाइये नहीं। मैं उनमें फूट डलवा दूंगी। फिर आप मजे में उनको अपनी इच्छा के अनुसार खाइयेगा।" सिंह ने भी बचा-खुचा मांस लोमड़ी को देने का वादा किया। अब वहाँ से लोमड़ी साँड़ों के पास गई। वहाँ उसने एक साँड़ से एकान्त में कहा—"देखो, ये तुम्हारे साथी बड़े लालची हैं। तुमको बलवान और परिश्रमी समझ, तुमसे डाह रखते हैं। वे स्वंय तो अच्छी-अच्छी घास खाते हैं; परन्तु तुम्हारे लिये गन्दी घास छोड़ देते हैं; ताकि तुम कमजोर हो जाओ। तुम इन स्वार्थियों का साथ क्यों नहीं छोड़ देते? चलो, मैं घास की ऐसी अच्छी टुकड़ी बताती हूँ कि तुम वहाँ

बड़ी प्रसन्नता से चरा करोगे।" इसी तरह लोमड़ी क्रम क्रम से तीनों साँड़ों के पास गई और ऐसी ही बातें बनाकर उनमें फूट डालने लगी। ये बेवकूफ सांड़ लोमड़ी की पट्टी में आ गये और परस्पर डाह करने लगे। द्वेष के कारण उनमें परस्पर लड़ाई भी होने लगी, जिसके कारण वे तीनों अभिन्न मित्र एक दूसरे के पक्के शत्रु बन गये। फिर क्या था, सिंह की बन आयी। उसने एक-एक करके उन तीनों साँड़ों को मारकर खा लिया और बचे-खुचे को लोमड़ी चट कर गई। ठीक है आपस की फूट का यही परिणाम है। इस राक्षसी फूट ने जिस राष्ट्र, प्रान्त, नगर, गांव और घर में प्रवेश किया उसका सर्वनाश ही करके छोड़ा। सच भी है जहाँ भाई ही भाई का शत्रु है, वहाँ कुशल कहाँ ? फूट के ही कारण आज यह पवित्र भारत विदेशियों द्वारा पद-दलित हो रहा है, तिस पर भी हमारी आँखें नहीं खुलतीं। एक हिन्दी के कवि ने फूट की फबती पर क्या ही अच्छा कहा है—

खेत में उपजे सब कोई खाय।
घर में उपजे घर बहि जाय॥

५७-मांसाहारी

एक मुल्ला साहब और एक पंडितजी से बहस छिड़ी। बहस का विषय था—मांस। मुल्ला साहेब ने कहा—"पंडितजी! आप लोग क्यों अपने को देवता और हम लोगों को म्लेच्छ कहते हैं? यह पक्षपात तो ठीक नहीं है।" पंडितजी बोले—"हाँ, यह तो ठीक है कि तुम लोग म्लेच्छ हो।" मुल्ला ने कहा—"क्यों?" पंडितजी ने कहा—"इसलिये कि तुम लोग

मांसाहारी हो, मांस खाते हो।" मुल्ला ने कहा—"वाह, आप लोग नहीं खाते? आप भी तो मांस खाते हैं।" पंडितजी ने आश्चर्य के साथ पूछा—"कैसे?" मुल्ला ने जवाब दिया—"तुम लोग शाक, तरकारी, अन्न आदि में भी तो जीव मानते हो, इसलिए उसका खाना भी मांस खाना हुआ। कहिये, अन्न आदि मांस नहीं हुए?" पंडितजी ने कहा—"हाँ, हुआ सही; पर तुम्हारे और हमारे मांस में अन्तर है।" मुल्ला साहब ने कहा—"कौन फरक है?" पंडितजी ने मुस्कराते हुए कहा—"हम जो शाक, भाजी, तरकारी, अन्नादि खाते हैं वह शुद्ध जल से उत्पन्न होता है और आप जो मांस खाते हैं वह मूत से पैदा होता है। बस हम में और आप में यही फरक है कि मूत से पैदा हुआ आप खाते हैं और शुद्ध जल से उत्पन्न हुए को हम। इसीलिए हम देवता हैं और आप म्लेच्छ।"

५८—मन

एक बार एक राजा किसी महात्मा के पास गये और हाथ जोड़कर बोले—"महात्मन्! यह चंचल मन हमको नहीं छोड़ता। कोई ऐसी युक्ति बतलाइये जिससे मन का प्रभाव हमको छोड़ दे और हम आज़ाद होकर परमात्मा का ध्यान करें।" महात्माजी ने एक हाथ में किसी वृक्ष की डाली पकड़कर कहा—"अगर यह डाली हमें छोड़ दे, तो हम तुम्हें मन को वश में करने की युक्ति बतला दें।" राजा साहब मुनि की यह दशा देख आश्चर्य में आ गये और बोले—"महाराज! आप ही तो डाली को पकड़े हुए हैं। जब चाहें आप स्वयं छोड़ सकते हैं। वह डाली तो जड़ है। उसकी क्या सामर्थ्य है जो आपको पकड़ सके।" यह सुन महात्माजी ने कहा—"क्या

तुम्हें इस बात पर पूर्ण विश्वास है कि जड़ वस्तु किसी को नहीं पकड़ती और जब चाहे मनुष्य उसे छोड़ सकता है ?" राजा साहब ने कहा—"तो इसमें प्रमाण की क्या आवश्यकता है। यह तो प्रत्यक्ष ही है।" तब महात्मा ने राजा को समझाते हुए कहा—"बस इसी तरह मन भी जड़ है। वह जड़ बेचारा चेतन जीवात्मा को कैसे नचा सकता है ? जिस तरह हम वृक्ष की डाली पकड़े हुए थे, उसी प्रकार आप मन को स्वयं पकड़े हुए हैं। मन पर आपका ही पूर्ण अधिकार है। यदि आप चाहें तो मन को तनिक सी देर में छोड़ दें और इसके फन्दे में न आयें। मन इसमें कुछ भी नहीं कर सकता। आप चाहें तो उस जड़ मन को ईश्वर में भी लगा सकते हैं और माया में भी फँसा सकते हैं; क्योंकि मन पूर्ण रीति से मनुष्य के अधिकार में रहता है। यह तो सब कहने की बातें हैं कि मन चंचल है और वश में नहीं आता।"

५६—बीरबल की खिचड़ी

माघ का महीना था। ठंढा के मारे शरीर अकड़ा जाता था। उस समय अकबर ने बीरबल से पूछा—"क्या ऐसा भी कोई मनुष्य है जो ऐसे समय रात-भर पानी में रहे ? मैं उसको ५००) रु० इनाम दूंगा।" परन्तु कोई इस बात पर तैयार न हुआ। बहुत खोजने पर एक ८० वर्ष का बूढ़ा ब्राह्मण इस बात पर तैयार हुआ। निदान वह चौकीदारों के सामने रात-भर पानी में बैठा रहा। जब सुबह को वह इनाम लेने के लिये दरबार में हाज़िर हुआ तो बादशाह ने पूछा—"तुम किसके सहारे रात-भर पानी में पड़े रहे ?" वृद्ध ब्राह्मण ने

कहा—"महाराज ! मैं रात-भर आपके किले की कन्दील को देखता रहा।" उस भोले-भाले ब्राह्मण की इस बात को सुन बादशाह ने कहा—"मालूम होता है कि तुमको उस कन्दील की गर्मी पहुँची है; इसलिये तुमको इनाम नहीं मिल सकता।" ब्राह्मण निराश होकर रोता हुआ घर चला गया। जब वीरबल का यह खबर मालूम हुई तो उसने ब्राह्मण को बहुत ढारस दिया। इसके पीछे एक दिन बादशाह जब शिकार को जाने लगे तब उन्होंने वीरबल को भी साथ चलने के लिये कहा। वीरबल ने कहा—"महाराज ! मैं भोजन करके अभी आया।" यह कहकर वीरबल तो अपने घर चला गया और उधर बादशाह उनकी इन्तज़ारी करने लगे। जब कुछ विलम्ब हुआ तो बादशाह ने बुलाने के लिये नौकर भेजा। परन्तु वीरबल ने यह कहकर नौकर को लौटा दिया कि अभी मेरी खिचड़ी तैयार नहीं हुई। दो तीन बार आदमी गया, पर यही उत्तर मिला कि अभी मेरी खिचड़ी तैयार नहीं हुई। तैयार होने पर मैं शीघ्र ही भोजन करके चला आऊँगा। बादशाह बड़े रुष्ट हुए और अकेले शिकार खेलने के लिए जङ्गल में चले गये। सन्ध्या को जब शिकार से लौटे तो पता लगा कि वीरबल अभी तक खिचड़ी बना रहा है। बादशाह को बड़ा अचम्भा हुआ और वे तुरन्त वीरबल की खिचड़ी देखने चले। जब वह वीरबल के घर पहुँचे तो देखते क्या हैं कि वीरबल ने एक बहुत ऊँचा बाँस खड़ा करके उसमें हाँडी लटकाई है और नीचे चूल्हे में आग धधक रही है। बादशाह ने पूछा—"वीरबल ! यह क्या हो रहा है ?" वीरबल बोले—"हुजूर ! खिचड़ी पक रही है।" अकबर ने कहा—"तू पागल हो गया है। इतनी दूर से हाँडी में आँच कैसे लग सकती है ?" वीरबल

ने मौक़ा समझकर कहा—"हुजूर! उस तरह से आँच पहुँचेगी कि जिस तरह उस वृद्ध ब्राह्मण को कदली की आँच पहुँची थी।" अकबर चुप हो रहा और शीघ्र ही उसने ब्राह्मण को पाँच सौ रुपये के बदले पाँच हज़ार रुपये दिलवाये। सच है—चतुर लोग चतुरता से मूर्खों को भी समझा देते हैं।

६०—मुसलमान

एक दिन अकबर बादशाह ने बीरबल से कहा कि तुम मुसलमान क्यों नहीं हो जाते। उत्तर में बीरबल ने कहा—"मैं तो ब्राह्मण हूँ, डोम आदि भी मुसलमान होने के लिये तैयार न होंगे; क्योंकि मुसलमान सबसे नीची जाति है।" यह सुनकर बादशाह बड़े क्रोधित हुए और बीरबल से बोले—"कल अपनी बात की सत्यता सिद्ध करो, नहीं तो कल तुम्हें फाँसी दे दी जायगी।" बीरबल ने कहा—"अच्छा।" यह कहकर बीरबल घर गया और सारे नगर में यह डुग्गी पिटवाई कि कल जितने भंगी नगर में मिलेंगे वे सभी मुसलमान बना दिये जायँगे। इस आज्ञा को सुनकर भंगियों ने मिलकर पंचायत की और उस पंचायत में यह निश्चित हुआ कि नगर को छोड़कर किसी अन्य स्थान में बसना उचित है; परन्तु दीन से बे-दीन हो जाना ठीक नहीं है। ऐसा निश्चित होते ही सभी भंगी अपने सामानों को भैंसों पर लादकर नगर छोड़ चलने लगे। जब वे सब महल के नीचेवाली सड़क से होकर जा रहे थे तो बादशाह ने इस शोर-गुल को सुन पूछा कि यह किस बात की धूम है? लोगों ने कहा—"इस नगर के सभी भंगी घर छोड़कर दूसरे स्थान पर बसने जाते हैं।"

बादशाह ने पूछा—"क्यों ?" बादशाह की आज्ञा से लोगों ने भंगियों से पूछा—"तुम लोग नगर क्यों छोड़ रहे हो ?" उत्तर में भंगियों ने चिल्लाकर कहा—"हुजूर ! हम लोग मुसलमान होना नहीं चाहते, इसीलिये आपका देश छोड़कर किसी दूसरे देश में बसने जाते हैं।" अवसर पाकर बीरबल ने बादशाह से कहा कि महाराज ! देखिये, जब भंगी भी स्वेच्छापूर्वक मुसलमान होना नहीं चाहते, तो मैं मुसलमान क्यों हो जाऊँ। हमारे यहाँ तो शास्त्र में यह लिखा है कि—

"न नीचायवनात्परः।"

परन्तु आजकल हममें यह भाव नहीं रहा। हर वर्ष कितने हिन्दू मुसलमान और ईसाई बनते जा रहे हैं, जिसके कारण शुद्ध आर्यों की संख्या घट रही है। वे नहीं जानते कि संसार-भर में कोई मज़हब, कोई मत, कोई जाति आर्य्य-जाति से बढ़कर नहीं है। सब जातियों की मूल जाति यह आर्य्य ज़ाति ही है; परन्तु इसी जाति की संख्या इस प्रकार घट रही है। यह देख खेद से कहना पड़ता है कि यदि कुछ दिनों तक यही दशा रही तो भारत से आर्य्य-जाति ही मिट जायगी। परन्तु सौभाग्य से आर्य्य-समाज ने इस पर विशेष ध्यान दिया है और शुद्धिरूपी अस्त्र से शत्रुओं को मार पुनः आर्यों की संख्या बढ़ाने के लिये कटिबद्ध हैं। अब आशा है कि एक दिन सारे भूमंडल में आर्य जाति ही दिखलाई देगी।

६१—वृक्ष और बेंट

एक लकड़हारा एक दिन अपनी कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी काटने के लिये जंगल की ओर चला। जब वह वहाँ पहुँचा तो

जंगल के वृक्ष डरकर कहने लगे कि भाई! तुम हमें व्यर्थ क्यों चीर-फाड़ डालते हो? क्या तुमको हमें काटते हुए तनिक भी दया नहीं आती? इस जीवन के सुख को दो चार दिन और भोग लेने देते। यह सुनकर लकड़हारे ने कहा—"भाई, तुम्हारा कहना बहुत ही ठीक है। मेरी भी यही इच्छा रहती है कि असमय में तुम्हें न काटें, परन्तु जब हमारी नज़र इस कुल्हाड़ी पर पड़ती है तो जी ललचा जाता है और बिना जंगल आये तथा तुम्हें काटे रहा नहीं जाता। अब तुम्हीं बताओ इसमें मेरा क्या दोष है? सारा दोष तो इस कुल्हाड़ी ही का है।" वृक्षों ने कहा—"खूब, हम जानते हैं कि इस कुल्हाड़ी का बेंट जो इसी जङ्गल की लकड़ी है, इस लोहे की कुल्हाड़ी से अधिक दोषी है। अगर यह न होती तो तुम इस असमय में मुझे क्यों काटते?"

पाठको! यह तो है दृष्टान्त परन्तु इसके दार्ष्टान्त पर खूब विचार कीजिये कि वृक्ष-रूपी मनुष्यों को यमराजरूपी लकड़हारा असमय में काटने आता है। जीव अपनी मृत्यु को देख विकल होता है और कहता है—"भाई यमराज! मुझे असमय में क्यों मारते हो, पूर्ण आयु तक सुख-भोग क्यों नहीं करने देते?" तब यमराज उत्तर देते हैं—"हाँ, मेरी भी यही इच्छा रहती है कि तुम्हें बिना आयु पूर्ण हुए न मारूँ; परन्तु तुमसे जो अधर्म पैदा हुआ है, वही तुमको मारने के लिये विवश करता है। जिस प्रकार वृक्ष की डाली से बने हुए बेंट से युक्त कुल्हाड़ी वृक्ष ही को काट गिराती है, उसी तरह मनुष्य से किया गया पाप ही उसका सर्वनाश करता है।" ठीक है—मनुष्य के असमय मरने का यही कारण है कि वह वेद भगवान की आज्ञाओं का अनादर करता है, माया के

कर्म-कर में पड़कर अपने उत्पन्न करनेवाले परमात्मा को भूल जाता और ब्रह्मचर्य-रूपी अमृत-बूँद को खोकर अनेक तरह के पापों में लिप्त रहता है। इतना भारी अपराध करने पर भी यदि वह असमय अकाल मृत्यु को प्राप्त करता है तो भी उसका भाग्य ही समझना चाहिये। यदि मनुष्य प्राकृतिक नियमानुसार धर्म का आचरण करे और अपने वीर्य्य की रक्षा करता रहे, तो कोई कारण नहीं कि वह अकाल मृत्यु से मरे। अपने बुरे कर्मों का फल ही सर्वनाश करा रहा है।

६२—एक मनुष्य का वस्त्र

एक मनुष्य संसारी झंझटों से हार मानकर जंगल में चला गया और वहीं कुटी बनाकर रहने लगा। उस समय उसके पास एक वस्त्र के सिवा और कुछ न था। दिन को वह मनुष्य उसी कपड़े को पहिनता और रात को बिछाकर सो रहता। दुर्भाग्य से उस जंगल में चूहे बहुत रहा करते थे सो उसके कपड़े को काट डालते। उस मनुष्य ने सोचा कि किसी तरह चूहों का नाश हो जाय। इस विचार से उसने एक बिल्ली पाली। बिल्ली को खाने के लिये दूध की जरूरत पड़ी, तो उस मनुष्य को एक गाय भी रखनी पड़ी; पर गाय के लिये घास कौन लावे? इसके लिए एक चरवाहे की आवश्यकता पड़ी। अन्त में उस मनुष्य ने एक आदमी को घास लाने के लिये नौकर रक्खा। जब नौकर हुआ तो रहने के लिये घर की जरूरत पड़ी। जब घर तैयार हुआ तो घर की देख-रेख करने के लिये एक दासी भी रख ली गई। दासी ने अपने कुटुम्ब के लोगों को भी साथ में रखने की इच्छा प्रगट

की। उस आदमी ने उन सब के लिये एक-एक अलग-पृथक् मकान भी बनवा दिया। इस प्रकार से जंगल कुछ दिनों के बाद एक नगर के रूप में परिणत हो गया और झंझट दिन दूने बढ़ने लगे। अन्त में यह देखकर उस मनुष्य ने कहा—

जग की झंझट और चिन्ता से भागना चाहो जितनी दूर।
उतनी ही झंझट चिन्ताएँ बढ़ती जाती हैं भरपूर॥

६३—दो मूर्ख और ढोल

दो मूर्खों ने एक ढोल का बाजा सुनकर अपने मन में क[हा] कि इस ढोल के अन्दर कोई आदमी घुसा हुआ है, वही आवा[ज] करता है; नहीं तो भला यह ढोल क्यों बजता? यह सोचक[र] वे दोनों इस बात की परीक्षा करने के लिये अवसर ढूँढ़[ने] लगे। जब ढोलवाला बाजा बन्द करके तथा उसे एक स्थान [की] खूँटी पर टांगकर किसी काम के लिये बाहर चला गया त[ब] झट ये दोनों उस स्थान पर पहुँच गये और ढोल के दोनों छोरों में एक-एक छेद कर एक साथ दोनों ने अपना-अपना हाथ भीतर घुसेड़ा। बस क्या था—एक ने दूसरे के हाथ को जोर से पकड़ लिया और दोनों चिल्लाने लगे कि बस अब वह दुष्ट आदमी हम लोगों के हाथों में आ गया।

एक ने कहा—"अरे रे! यह तो बड़ा चालाक और बदमाश मालूम होता है। कुछ भी हो, अब इसे तो मैं कदापि नहीं छोड़ूँगा।" दूसरे ने कहा—"अरे तुम भले ही छोड़ दो पर मेरे हाथ से तो यह छूट ही नहीं सकता। मैं इस आदमी को नौकर रक्खूंगा।" इस प्रकार बकते-झकते वे बड़े प्रसन्न हो रहे थे। कभी तो एक दूसरे को खींचते-खींचते बहुत दूर ले जाता और

कभी दूसरा पहले को। इस प्रकार के हास्योत्पादक दृश्य को देख-कर लोग हँसने और अचरज करने लगे। इतने में ढोलवाला पहुँच गया और दोनों मूर्खों की घूसों-लातों द्वारा खूब पूजा की और कहा—"लो यही आदमी उसके भीतर था।" पर उसका सुन्दर ढोल तो फूट ही गया था। इस पर उसने अफ़सोस की हँसी के साथ कहा—"सच है, मूर्खों की कल्पनाओं में तीन-तीन पूछें भी हुआ करती हैं।

इसी तरह इस भुवन-मंडलरूपी ढोलक का बजानेवाला कौन है, इस बात के जानने के लिये सभी मज़हबवाले आपस में कुश्ती-कुश्ता करते और कहते हैं कि मैंने उसे पकड़ लिया (प्राप्त कर लिया) है। परन्तु वे भी उन्हीं मूर्खों की तरह ज्ञान के अन्धे हैं और नहीं जानते कि इस विश्वरूपी ढोल का बजानेवाला बिना शरीर के अर्थात् निराकार है और ढोल का बजानेवाला प्रकृति है। क्या अब भी परमात्मा को साकार माननेवाले अपनी हठ को नहीं छोड़ेंगे? और जगत् के बनाने-वाले को निराकार कहने से इनकार करेंगे गुसाईंजी ने तो साफ़ लिख दिया है—

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना, कर बिन कर्म करै विधि नाना।
आननरहित सकल रस भोगी, बिनु बाणी वक्ता बड़ योगी॥

इत्यादि-इत्यादि।

६४—आजकल के दानी

किसी देश के एक राजा बड़े दानी थे। वे मुंह-माँगा दान दिया करते थे, पर खूबी यह थी कि उनका दिया हुआ दान उन्हीं के यहाँ लौट आता था। बात यह थी कि उन्होंने दान

में दिये हुए वस्तुओं के साथ दान देनेवाले गरीबों की गठरी-मुटरी तक को भी लूट लेने के लिये मनुष्य नियत कर दिया था। जब वे लोग देखते कि अमुक आदमी को दान मिला है और यह अमुक रास्ते से कल या परसों घर जानेवाला है, तब उस रास्ते के जनशून्य स्थान पर जाकर छिप रहते और जब वह मनुष्य उस मार्ग से होकर निकलता, तब उस पर टूट पड़ते और मार-पीटकर उसका सर्वस्व छीन लेते। वह बेचारा रोता-पीटता, हाय-हाय करता घर जाता। उधर लूटा हुआ धन दानी राजा के कोष में जाता। एक समय एक कवि उस राजा की सभा में पहुँचे और अपनी कविताई से सब के मन को हर लिया। राजा साहब बड़े प्रसन्न हुए और उस कवि को एक घोड़ा, बहुत से शाल-दुशाले और धन दिये। कवि महाशय को राजा की बगुलाभक्ति ज्ञात थी। घर जाने के दिन कवि घोड़ा लेकर राजा के पास बिदा होने के लिये पहुँचा। राजा की आज्ञा पाने के पश्चात् वे दान में पाये हुए शाल-दुशाले, धन आदि की गठरी को हाथ में लिए घोड़े पर ऐसे बैठे कि घोड़े की पूंछ की ओर उनका मुँह और घोड़े के मुँह की ओर उनकी पीठ अर्थात् कविजी घोड़े पर उलटे बैठकर बाएँ हाथ को पीठ की ओर ले जाकर उससे बागडोर पकड़ी और दाहिने हाथ में आगे की ओर जोर से गठरी रक्खी। इस हास्योत्पादक दृश्य को देख राजा ने पूछा—"कविजी, यह क्या है?" कविजी ने उत्तर दिया—"महाराज, यदि आपके लुटेरे मुझ पर टूटें तो मैं पीटे जाने के पहिले ही यह दान में पाये हुए सामानों की गठरी उन्हें दे दूं।" राजा ने यह सुनकर लज्जा के मारे सिर नीचा कर लिया और तब से फिर दान में दी हुई वस्तुओं को लुटवा लेना बन्द कर दिया।

६५—निमंत्रण

एक बावाजी बड़े निरपेक्षी थे। जिस वन में वे रहते थे उसी वन के समीपवाले गाँव में किसी सेठजी के यहाँ भोज था। बावाजी के यहाँ भी निमंत्रण आया; परन्तु बावाजी ने यह कहकर कि हम नहीं जाते, निमंत्रण को अस्वीकार कर दिया। फिर उनके शिष्यों ने भी आकर बहुत कहा; पर बावाजी ने एक न मानी। निदान वे बेचारे भी हार मानकर लौट गये। सेठजी पूरे भक्त थे। उन्होंने सोचा कि जब महात्माजी यहाँ भोजन करने नहीं आते, तो वहीं ले चलना चाहिये। ऐसा विचारकर वे सब सामान एक थाल में रख महात्माजी के पास पहुँचे और थाल उनके सामने रक्खा; परन्तु फिर भी बावाजी ने स्वीकार नहीं किया और बोले—"सामने से हटाओ। मैं भोजन नहीं करूँगा।" सेठजी बड़े दुखी हुए और गिड़गिड़ाकर कहने लगे—"महाराज! मुझसे क्या अपराध हुआ, क्षमा कीजिये और इसको स्वीकार कीजिये।" यद्यपि सेठजी ने बहुत विनती की; पर महात्मा को तनिक भी दया नहीं आयी। वे क्रोध में भरकर उठे और थाली को उठाकर धूनी में फेंक दिया। इस आचरण से सेठजी को बड़ा दुःख हुआ और वे बेचारे जी मसोसकर चुप-चाप घर चले गये। जब वहाँ कोई न रहा, तो महात्माजी, जो नकल साधे बैठे थे, मन में यह विचारने लगे कि देखें थाल में कौन-कौन सी चीजें थीं? यह विचारकर बावाजी थाली उठाकर देखते हैं कि उसमें नाना प्रकार के अच्छे-अच्छे व्यंजन और पकवान सजाये हुए रक्खे हैं। पकवानों को देखकर बाबा के मुँह में पानी भर आया और राख में से उठा-उठाकर खाने लगे; परन्तु राख में मिले हुए पकवानों में वह

स्वाद कहाँ? बाबाजी बड़े पछताये और हाथ मलकर अपने इस कुकृत्य पर अफ़सोस करने लगे। अन्त में तृष्णा के वशीभूत होकर रात्रि के समय उस सेठ के घर इस विचार से चले कि मंगन के रूप में कुछ माँगकर खा लेंगे। जब वह महात्मा सेठजी के द्वार पर पहुँचे और मंगन के रूप में होकर माँगने लगे, तब सेठजी स्वयं एक हाथ में थाल और दूसरे हाथ में दीपक लेकर देने को निकले। बाबाजी यह सोचकर कि कहीं यह भक्त मुझे पहिचान न ले अपने पीठ पीछे की ओर खिसकने लगे। सेठजी भी उन्हें बुलाते हुए आगे बढ़ने लगे और बाबाजी ने भी पीछे ही खिसकना आरम्भ किया। पास ही सेठ के द्वार पर एक कुवाँ था, बाबाजी खिसकते-खिसकते उसी कुएँ में जा गिरे। मंगन को कुएँ में गिरते देख सेठजी ने अपने नौकरों को आवाज़ दी। आज्ञा पाते ही वे दौड़े हुए आये और कुएँ में पैठ उन्होंने बाबाजी को कुएँ से बाहर किया। जब सेठजी को यह मालूम हुआ कि ये तो वही बाबाजी हैं, जिन्होंने मेरे निमंत्रण को अस्वीकार करके भोजन से भरी थाली धूनी में डाल दी थी; तो वे कहने लगे—"ठीक है, जो किसी के प्रेमाग्रह को अस्वीकार करके उसे निरादर करता है, वह अवश्य दुखी होता और अपमान का पात्र बनता है।" इसी विषय को लेकर किसी कवि ने इस छंद की रचना की है—

प्रार्थितो नहिं कुर्वीत निराकृत्यागतं हठात्।
दुःखी संजायते नूनं वांताशी वयथा यतिः॥

६६—लोभ से हानि

एक लोभी आदमी किसी ऊँचे वृक्ष पर चढ़ गया। उसने जब नीचे की ओर देखा तो उसकी नजर फिर गयी और उसको उतरने की सुधि भूल गई। अब उसको उतरने की तरकीब ही भूल गई। ऐसे ही समय में परमात्मा याद आते हैं। वह मनुष्य मन में परमात्मा को मनाने लगा कि हे जगत्-पिता! अगर मैं नीचे उतर जाऊँ तो सौ ब्राह्मणों को आपके नाम पर खिलाऊँगा। जब बीच में आया, तो कहने लगा कि हे भगवन्! मैंने भूल से सौ कह दिया था, पचास ब्राह्मणों को अवश्य खिलाऊँगा। जब कुछ और नीचे आया तो कहने लगा कि पचीस ब्राह्मणों को ही खिलाऊँगा। इसी तरह ब्राह्मणों की संख्या घटाने लगा और जब बिल्कुल नीचे उतर आया तो कहने लगा—"परमात्मन्! क्षमा कीजिये। मैं एक ब्राह्मण को श्रद्धा-समेत अवश्य आपके नाम खिलाऊँगा।" ऐसा कहकर वह आदमी अपने घर गया और इस बात का पता लगाने लगा कि कौन ब्राह्मण सब से कम खाता है? बहुत दिनों तक वह इसी फेर में पड़ा रहा। यदि किसी ब्राह्मण को देखता तो उसका पहला प्रश्न यही होता कि महाराज! आपकी खूराक कितनी है? कोई एक सेर बताता, तो कोई आधा सेर; परन्तु उस लोभी को इससे भी कम खाने-वाले ब्राह्मण की तलाश थी। संयोग से एक दिन एक चौबे-जी मिले। लोभी ने कहा—"महाराज, आप कितना खाते हैं?" चौबेजी ताड़ गये और बोले—"बच्चा! बहुत कम, केवल एक छटाँक के क़रीब।" अब तो लोभी सेठजी को मालूम हो गया कि इससे कम खानेवाला ब्राह्मण शायद ही मिले।

हमारी बड़ी भाग्य थी, जो यह अल्पभोजी महाराज मिल गये। इसलिये उन्होंने दूसरे दिन के लिये चौबेजी को न्योता दिया और कहने लगे—"पंडितजी! कल आकर आप हमारे यहाँ ही भोजन कीजियेगा।" चौबेजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—"जजमान की जै बनी रहे। हम तो नित्य आप ही लोगों के यहाँ भोजन करते हैं।" चौबेजी ने यह कहकर अपने घर का रास्ता लिया। उधर लोभी महाशय अपने घर जा सेठानी से बोले—"हम अमुक ब्राह्मण को कल के लिये न्योत आये हैं। हम तो कल फलां नगर में सौदे के लिये जायँगे जब चौबेजी आवें, तो उनकी इच्छानुसार सब सामान ठीक कर देना और जो माँगें सो दे देना।" वह तो यह जानते थे कि जब चौबेजी की एक ही छटांक की खूराक है, तो माँगेंगे ही क्या? सेठानी ने कहा—"बहुत अच्छा।" दूसरे दिन सेठजी तो सौदा खरीदने के लिये दूसरे नगर में चले गये और उधर चौबे महाराज ने आकर सेठानी को आशीर्वाद दिया। सेठानी वैसी लोभिनी न थीं। वह बड़ी ही सीधी-सादी, पतिव्रता और ब्राह्मण-भक्त स्त्री थीं। उन्होंने ब्राह्मणदेव को प्रणाम करके पूछा—"पंडितजी, आपको किन-किन चीजों की जरूरत है?" चौबेजी बोले—"आपको कष्ट करने की जरूरत नहीं। यह तो अपना घर ठहरा। जिन वस्तुओं की आवश्यकता होगी, मैं स्वयं माँग लूंगा।" सेठानी ने कहा—"तो भी?" पंडितजी बोले—"सरेदस्त १० मन मैदा, १० मन घी और ५ मन चीनी; इसके अतिरिक्त २ मन तरकारी मै सामान के। साथ ही मोहनभोग के लिये क़रीब दो मन मेवों की आवश्यकता पड़ेगी। आप इसका प्रबन्ध करा दें।" सेठानी की आज्ञा से भंडारघर का फाटक खोल दिया गया। पंडितजी

ने सब सामान सेठ के नौकरों द्वारा अपने घर भेजवा दिया और आपने अपने लिये कुछ थोड़ा सा भोजन बना लिया। भोजन करने के उपरान्त पंडितजी ने सेठानीजी से कहा—"जजमान, अब हमारी दक्षिणा मिलनी चाहिये।" सेठानी ने पूछा—"कितनी?" चौबेजी बोले—"चाहिये तो १०० अशर्फ़ी; पर आप जो दें!" सेठानी यह कहती हुई कि "कुल किया-कराया मिट्टी कर दूँ जो आपको दक्षिणा कम दूँ" उन्होंने ब्राह्मण देवता को १०० अशर्फ़ियाँ दे दीं। अब क्या था—चौबेजी आशीर्वाद देते हुए घर की ओर चले। घर जाकर अपनी ब्राह्मणी से बोले—"देख, मैं तो भीतर जाकर सो रहता हूँ और तू द्वार पर जाकर बैठ। जब सेठजी हमको पूछते हुए आवें, तो तू कहना कि जब से पंडितजी आपके यहाँ से भोजन करके आये, तब से बहुत सख़्त बीमार हैं। बचने की कोई उम्मेद नहीं है। न मालूम आपने क्या खिला दिया। यह कहकर रोने लगना।" पंडितजी स्त्री को समझा-बुझाकर भीतर गये और एक चारपाई पर लेट रहे। उधर जब शाम के वक़्त सेठजी घर पहुँचे, तो सेठानी से पूछा—"क्या पण्डितजी आये थे और भोजन कर गये?" सेठानी ने कहा—"हाँ, आपके लिये भी थोड़े से मोहनभोग परसाद के लिये रख गये हैं।" सेठजी मोहनभोग का नाम सुनते ही काँप उठे और बोले—"क्या कहा? क्या, मोहनभोग!" स्त्री ने कहा—"हाँ; दस मन आटा, दस मन घी, पाँच मन चीनी और दो मन मेवे तो उन्होंने घर भेज दिया और आप अलग यहाँ बनाकर भोजन कर गये हैं। ये थोड़े से मोहनभोग और ये थोड़ी सी पूड़ियाँ हम लोगों के लिये परसाद छोड़ गये हैं। चलते समय मैंने उनकी दक्षिणा भी १०० अशर्फ़ियाँ दे दी हैं। अब कुछ बाक़ी तो नहीं

रह गया ?" जो सेठजी लोभ के मारे पैसा-भर गुड़ खाकर दिन-दिन-भर यों ही रह जाते थे, इस खबर को सुनकर उनकी क्या दशा हुई होगी, इसे परमात्मा ही जाने। परन्तु वह मूर्छित हो अचेत तो अवश्य हो गये। चेत आने पर आप ब्राह्मणदेव के यहाँ पहुँचे और द्वार पर से ही चौबेजी को पुकारने लगे। सेठ को आया जान ब्राह्मणी रोती-पीटती बाहर निकली। सेठ ने पूछा—"यह क्या है ?" ब्राह्मणी ने रोते-रोते कहा—"उन्हें तो, जब से वे आपके यहाँ से भोजन करके आये हैं, न मालूम क्या हो गया है ? बहुत सख्त बीमार हैं; यहाँ तक कि बचने की कोई आशा नहीं है। न जाने आपने उनको क्या खिला दिया ?" सेठजी यह सुनकर भौचक्के से रह गये और मन में सोचने लगे कि कहीं यह ब्राह्मण मर न जाय: नहीं तो सरकारी जेल का पथिक बनना पड़ेगा। ऐसा विचारकर सेठजी हाथ जोड़ धीरे-धीरे ब्राह्मणी से कहने लगे—"अरे ! आप चिल्लाएँ नहीं। हम आपको अभी ४००) रुपये दिये देते हैं। आप इन रुपयों से इनका इलाज करें और यह न कहा करें कि सेठजी ने न मालूम क्या खिला दिया, जो यह मर रहे हैं; बल्कि यह कहियेगा कि न मालूम इनको कौन सी बीमारी हो गई है जो सख्त परेशान हैं।"

पाठक ! देखा आपने ? यह कंजूसों की हालत है। आप तो न खाते हैं और न खर्च करते हैं; बल्कि उनका धन दूसरों ही के काम आता है।

> खाय न खरचै सूम धन, चोर सबै लै जाय।
> पीछे ज्यों मधुमच्छिका, हाथ मलै औ पछताय॥

एक संस्कृत के कवि का कहना है कि—

कृपणेन समो दाता न भूतो न भविष्यति ।
स्पृशन्नेव विना याति परेभ्यो न प्रयच्छति ॥

देखा, कैसा अच्छा भाव है—"जाड़-जाड़ मर जायेंगे, माल जमाई खायेंगे ।"

६७—ब्रह्मचर्य्य

श्रीशुकदेवजी आजन्म बाल-ब्रह्मचारी रहे । कहावत है कि वे जन्म होते ही तपस्या करने के लिये जंगल में चले गये । चलते समय महर्षि व्यासदेवजी उनको समझाते हुए बोले—"हे पुत्र ! हमारे पितामह का नाम तो हमारे पिता के नाम से और हमारे पिता का नाम हमसे चला । हमारा भी नाम संसार में तुमसे अचल रहेगा ; परन्तु तुम्हारे आगे हमारे वंश का नाम ही मिट जायगा । यदि तुम्हें तपस्या ही करनी है, तो हमारी तरह विवाह करके स्त्री-समेत तपस्या करो ।" परन्तु महात्मा शुकदेवजी क्या उत्तर देते हैं, जरा इस पर भी ध्यान दीजिये । वे कहते हैं—"पिताजी ! यह समझना भूल है कि पिता का नाम पुत्र के नाम से जगत् में अचल रहता है । किसी का नाम, उसी के सत धर्मों पर अवलम्बित है । जो सत्यवादी, धर्मवादी और ब्रह्मचारी है उसी का नाम सूर्य्य-चन्द्र के सदृश अचल समझिये ; चाहे उसके पुत्र-पौत्र हों अथवा न हों । जब ऐसी बात है, तो वंश-नाश के भय से शुकदेव अपने ब्रह्मचर्य्यरूपी अमृत को अपने हाथ से नहीं त्याग सकता ।" इतना कहकर शुकदेवजी ने वन का मार्ग लिया । पीछे-पीछे उनको लौटा लाने के लिये महर्षि व्यासजी भी चले । रास्ते की नर्वदा नदी में वहाँ के राजा की स्त्री, कन्या

और भगिनियां आदि स्नान कर रही थीं। उन सबों ने शुकदेवजी को देखकर परदा नहीं किया और जब पीछे से व्यासजी आये तो सबों ने लज्जा से परदा कर लिया। व्यासजी यह देखकर आश्चर्य में पड़ गये और उन्होंने उनसे पूछा—"पुत्रियो! इसका क्या कारण है कि तुम सब ने मुझ से परदा किया और शुकदेव को देखकर नहीं किया?" यह सुनकर स्त्रियों ने कहा—"महाराज! आपको स्त्रियों के सम्बन्ध की सभी बातें मालूम हैं और काम ने आपको भी परास्त किया है, इसलिये हमने आपको देख परदा किया है। और शुकदेवजी तो कामशास्त्र से बिलकुल अनजान हैं, इसलिये हमने उनसे परदा करने की आवश्यकता नहीं समझी।" व्यासजी इस उत्तर को सुनकर यह कहते हुए अपनी कुटी को लौट गये—

"धर्म्यं यशस्य मायुष्यं लोकद्वय रसायनम्।
अनुमोदामहे ब्रह्मचर्यमेकान्तं निर्मलम्॥"

लोक में यह कहावत है कि—"डूबा वंश कबीर का उपजा पूत कमाल।" अर्थात् कबीर ने तो कमाल को उत्पन्न करके तपस्या की; परन्तु कमाल ने बिना ब्याह ही किये फ़क़ीर हो तपस्या करने के लिये वन का मार्ग लिया। कमाल का अद्भुत ब्रह्मचर्य्य देख लोगों ने कहा—

"अर्द्ध भक्तः कबीरोऽभूत सर्वभक्तः कमालकः।"

उनकी कथा यह है कि एक बार कबीरजी ने अपने पुत्र कमाल से कहा था कि बेटा! उठ और लंगोट बाँध ले। कुछ दिनों के बाद जब कमाल युवा हुए, तो कबीर को उनके ब्याह की चिन्ता हुई। जब यह खबर कमाल को मिली, तो बोले—"क्या लँगोट बँधवाकर अब खुलवाओगे?" यह सुनकर कबीर

पानी-पानी हो गये और तभी से कमाल का नाम कमाल हुआ। सच है—

"ब्रह्मचर्य्य प्रतिष्ठायां वीर्य्यलाभः"

अहा! कैसा अच्छा भाव था, क्या ही उत्तम विचार था और किस उच्च कोटि का ब्रह्मचर्य्य था। ऐसे-ऐसे उदाहरणों से आर्य साहित्य भरा पड़ा है। भीष्म, लक्ष्मण और हनुमान ऐसे-ऐसे ब्रह्मचारियों से तो सारा संसार परिचित है। परन्तु हाय! आज की दशा कहते हुए छाती फटी जाती है और नेत्रों से आँसुओं की अविरल धाराएँ प्रवाहित हो रही हैं। कहाँ तक कहें, जहाँ चिकनी मिट्टी देखते हैं वहीं फिसल जाते हैं। अमृतरूपी वीर्य्य को खोकर, उस अमूल्य अमृत को पानी की तरह बहाकर औषधियों को ढूंढ रहे हैं। हम नहीं जानते कि जिसका नाम अमृत है वह और कोई वस्तु नहीं केवल वीर्य्य ही है। इसी का नाम अमृत है। प्राचीन काल के ऋषि-मुनियों की आयु देख हम आज दाँतों तले उँगली दबाते हैं और अपनी इस अकाल मृत्यु पर, इस अल्पायुपान पर शोक करते हैं; परन्तु यह नहीं जानते कि इसी वीर्य्य-रक्षा के बल से लोग दीर्घजीवी होते थे। यहाँ तो घर-घर विवाह की धूम मची हुई है। आठ वर्ष के बालक, जिनको संसार की कुछ भी खबर नहीं होती, ब्याहरूपी बंधन में बाँधे जा रहे हैं। उनका ब्याह कर माँ-बाप आनन्द के गीत गाते हैं, परन्तु वे यह नहीं सोचते कि हम इस अबोध बालक का सर्वनाश कर रहे हैं। भाइयो! अब भी चेतो, अब भी उठो और शीघ्रता से इस बाल-विवाह के मूल को उखाड़कर फेंक दो। जिस दिन बाल-विवाह का नामोनिशान भारत से मिट जायगा, उसी दिन से हम दीर्घ-जीवी तथा बलशाली होने लगेंगे और फिर इस पवित्र आर्यावर्त

में मार्कण्डेय ऐसे दीर्घजीवी, भीम-अर्जुन ऐसे महावीर और धर्मराज युधिष्ठिर ऐसे धर्मवान उत्पन्न होने लगेंगे। फिर क्षीण-बल, क्षीण-काय और क्षीण-आयु के मनुष्य देखने में भी न आयेंगे।

६८—क्रोध

श्यामनगर में एक मुसलमान खानदान रईसी के लिये बहुत मशहूर थे। उस घराने के लोग बड़े-बड़े विद्वान और अच्छी-अच्छी नौकरियों पर थे; किन्तु सभी एकसे नहीं हुआ करते; यह एक स्वाभाविक बात है। उन्हीं में अब्दुलगनी नाम का एक लड़का था। यद्यपि वह बड़े डील। डौल का सुन्दर मनुष्य था; परन्तु पढ़ने से उसकी कट्टर दुश्मनी थी। जहाँ उसमें और बहुत से ऐब भरे हुए थे उसमें एक ऐब यह भी था कि वह बड़ा क्रोधी था। लड़कपन ही से वह क्रोध के लिये मशहूर था। लोगों ने उसे बहुत समझाया; परन्तु इस समझाने का उस पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा और आयु के साथ ही उसकी उद्दंडता भी बढ़ती जाती थी। यद्यपि वह पढ़ा-लिखा तो कुछ भी न था; परन्तु शिफ़ारिस भी तो कोई चीज़ है। वह झट एक थाने के थानेदार हो गये। अब क्या था, अपने तर्रारपन और अपने शानो-शौकत के सामने किसी को कुछ न समझते। इनके कुशासन, जुल्म और अत्याचारों से प्रजा दबती जा रही थी। तनिक सी बात पर भी आप क्रोध से बाहर हो जाते और बड़े-बड़े इज्जतदारों की इज्जत को धूल में मिला देते थे। कानिष्टिबिलों और चौकीदारों के लिये तो आप यम-राज से कम न थे। हंटरों से कितने मनुष्यों के चूतरों की खालें उड़ गई थीं और जूतों की मार से न मालूम कितनों

की खोपड़ी के वाल झड़ गये थे। गालियाँ तो आपके श्रीमुख के लिये भूषणस्वरूप थीं। विना गाली के तो उनके मुँह से कोई वात ही नहीं निकलती थी। परन्तु यह कोई नियम नहीं है कि सभी लोग मार खाकर चुप रहें। अगर यही नियम होता तो "शठेचशाठ्यम्" की नीति शास्त्र में लिखने की क्या आवश्यकता थी? कभी-कभी ऐसा होता है कि जो काम वड़े-वड़े लोग भी नहीं कर सकते उसे एक अदना आदमी पूरा कर देता है। एक दिन की वात है कि थानेदार साहव ने एक जाट को वहुत पीटा, गालियों के मारे तो नाक में दम कर दी; साथ ही उस वेचारे जाट पर मार भी वाजार-भाव से कम न पड़ी। जाट ने मार को तो किसी प्रकार सह लिया; परन्तु गालियाँ उससे सही न गईं। सही कैसे जातीं? जब कि—

"रोहते शायकैर्वद्धिं वनं परशुनाहतम्।
वाचा दुरुक्तं वीभत्सं नापि रोहितवाक्क्षतम्॥"

के अनुसार तीर-तलवार का ज़ख्म भर सकता है; परन्तु ज़वान का ज़ख्म नहीं भरता।

निदान, उसने एक दिन जवकि थानेदार साहव चैन से चारपाई पर पड़े नींद के खर्राटे ले रहे थे, थानेदार साहव की किरच, जो पास ही रक्खी थी, मियान से निकाल हज़ारों किरचें उनके मुँह पर मारीं अर्थात् उनके मुँह के टुकड़े-टुकड़े कर डाला। साथ ही जिन हाथों द्वारा उस पर मार पड़ी थी उसे भी काट डाला। ठीक ही है—

क्रोधोहि शत्रुः प्रथमा नराणां देहस्थितो देह विनाशानाय।
यथा स्थितः काष्ठगतोहि वन्हिः स एव वन्हिर्दहते च काष्ठम्॥

ज़िस प्रकार जिस घर में पहले आग लगती है, तो पहले

वही घर जलता है, पीछे दूसरा। उसी प्रकार क्रोधरूपी अग्नि पहले उसी आदमी को जलाती है, जो कि क्रोध करता है। पाठको! आपने देखा, क्रोध का क्या परिणाम हुआ? जिस मुँह से गाली निकली थी; उसकी क्या दुर्दशा हुई। मारने-वाले हाथ किस निर्दयता के साथ काटे गये?

जब सवेरा हुआ और अपराधी का पता लगाया जाने लगा तो अनेकों प्रयत्न करने पर भी हत्याकारी जाट का पता न लगा। पता लगानेवाले सभी अफसरान मुँह-बाये रह गये। पीछे पता लगा कि जाट साहब अपने पापों का प्राय-श्चित्त करने के लिये नैपाल की तराई में जाकर तपस्या करते हैं; परन्तु अब तक उनको अधिकारीवर्ग पा न सके।

अन्धीकरोमिभुवनंबधिरीकरोमि धीरस्ययतनमचेतनतांनयामि।
कृत्यनपश्यति न येनहितंशृणोतिधिमानधीतमपिभपतिसंदधाति॥

६९—देखादेखी

एक ईमानदार गरीब बढ़ई का बसूला नदी में गिर पड़ा। बढ़ई ने दुहाई दी—"हे ईश्वर! मैं गरीब आदमी हूँ। मेरा कमाई का राच नदी में गिर पड़ा है। तू मेरी मदद कर और मेरा बसूला मिल जाय।" परमात्मा ने उसकी बात सुन ली और नदी से एक सोने का बसूला निकला और आवाज आई "ले अपना बसूला"। बढ़ई ने कहा—"हे ईश्वर! यह तो मेरा बसूला नहीं है।" फिर चाँदी का बसूला निकला और आवाज आई "ले अपना बसूला"। बढ़ई ने कहा—"हे ईश्वर! यह तो मेरा बसूला नहीं है।" इसके उपरान्त नदी से लोहे का बसूला निकला और बढ़ई ने अपना पहिचानकर हाथ बढ़ा ले लिया।

बढ़ई की ईमानदारी ईश्वर को बहुत पसंद आई और आवाज़ आई कि—"ले तुमको सोने और चाँदी का वसूला इनाम दिया; ले और अपना काम कर।" परमात्मा की अनुपम दया और अपनी ईमानदारी के फलस्वरूप तीनों वसूलों को लेकर बढ़ई अपने घर गया। रास्ते में उसको एक बेईमान आदमी मिला। उसने पूछा—"यह तुमको सोने और चाँदी का वसूला कहाँ से मिला?" उस बेचारे बढ़ई ने सच-सच सारी कथा कह सुनाई। अब तो उस बेईमान को भी यह चिन्ता हुई कि किसी तरह हमको भी सोने और चाँदी का वसूला मिल जाय। यह विचारकर वह उसी नदी के किनारे गया और देखादेखी जान-बूझकर अपना वसूला नदी में डाल दिया। फिर चिल्लाने लगा—"मेरा वसूला, मेरा वसूला।" नदी से आज भी सोने का वसूला निकला और आवाज़ आई कि ले अपना वसूला। बेईमान तो यही चाहता था, झट आगे बढ़-कर बोला—"हाँ-हाँ, यही मेरा वसूला है।" नदी से आवाज़ आई कि तू पाजी है, वसूला तेरे पास नहीं जा सकता। तू खुद यहाँ आकर अपना वसूला ले जा।" वह आदमी काछा काछकर नदी में घुसा। इतने में उस बेईमान का पाँव फिसला और वह नदी में गिरकर डूब गया। सच है, जो बेईमान देखादेखी करते हैं उनको ऐसी ही सज़ा मिलती है। मनुष्य को सर्वदा ही अपने कर्तव्य और धर्म का भरोसा करना उचित है। जो दूसरों की देखादेखी करते हैं, उनका स्वयं सर्वनाश हो जाता है। इसलिये कभी भी किसी की देखादेखी नहीं करना चाहिये।

ऐसे ही एक और दृष्टान्त है—एक व्योपारी, गदहे पर रुई और घोड़े पर नमक लादे हुए जा रहा था। रास्ते में एक नदी

मिली। व्योपारी अपने जानवरों को ऐसे रास्ते से ले गया जहाँ कि नदी की गहराई बहुत कम थी। चलते-चलते घोड़े ने पानी में एक डुबकी लगाई, जिसकी वजह से नमक घुल गया और उसका बोझ कुछ कम हो गया। गदहे ने जो यह दशा देखी कि घोड़े ने पानी में डुबकी लगाई है, तो उसने भी घोड़े की देखादेखी पानी में डुबकी लगाई। डुबकी लगाते ही रुई भीग गई और गदहे का बोझ दूना हो गया। गदहे ने जो देखादेखी की, इसके बदले उसे नुक़सान ही हुआ और उसे दूना बोझ उठाना पड़ा।

देखादेखी का एक तीसरा दृष्टान्त भी प्रसिद्ध है—एक धोबी के यहाँ एक कुत्ता था। कुत्ता रात को लोगों को देखकर भूँका करता और अपने मालिक को जगाया करता था। इसी काम से वह धोबी उस कुत्ते को नित्य खाना खिलाया करता था। इसके विपरीत धोबी का गदहा दिन-भर धूप में कपड़े ढोता, तो कहीं शाम को एक टुकड़ा रोटी पाता। एक दिन गदहे ने सोचा कि अगर हम भी कुत्ते की तरह रात को भूँका करें, तो मालिक मुझसे भी बड़ा प्रसन्न रहेगा और मुझे भी कुत्ते की तरह खाना देता रहेगा। ऐसा विचारकर वह गदहा कुत्ते की देखादेखी उस रात को खूब चिल्लाया। उसके चिल्लाने से धोबी के क्या सारे गाँववालों के कान के पर्दे फटने लगे। तब तो धोबी ने उठकर उसको खूब पीटा। अब तक तो यह मालिक को खुश करने के लिये कुत्ते की देखादेखी चिल्ला रहा था; परन्तु अब मार पड़ने से घाव के मारे और भी ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा। धोबी जब सोंटे से खूब पूजा कर चुका और गदहे ने चिल्लाना बन्द न किया, तब उसने सोचा कि कहीं इसको कोई बीमारी न हो गई हो। गाँव में ही एक चतुर

आदमी रहते थे, वही सबका इलाज किया करते थे। धोबी बेचारा दौड़ा हुआ उनके यहाँ गया और हाथ जोड़कर कहने लगा—"हमारा गदहा बीमार है। न मालूम क्यों रात-भर चिल्लाता रहा। चलकर देख लीजिये और कोई दवा दीजिये।" वैद्यराज महाशय आये और गदहे को इधर-उधर से देखकर बोले—"इसे तो भयंकर रोग हो गया है। अगर आप इसे अच्छा करना चाहते हैं, तो गर्म लोहे से इसको कई स्थानों पर दाग दीजिये।" धोबी ने ऐसा ही किया और गदहे के सारे बदन को लोहा गर्म करके इस क़दर दागा कि उस बेचारे का रोग जड़ से नाश हो गया। साथ ही वह भी अपने प्राण को त्याग सदा के लिये संसार से चल बसा। यह है देखा-देखी करने का परिणाम।

७०—आजकल के श्रोता

एक गाँव में वाल्मीकीय रामायण की कथा हो रही थी। रामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण-समेत वन-यात्रा के लिये तैयार हैं। कौशल्या के वात्सल्य प्रेम को सुन-सुनकर श्रोता-समाज विषाद और करुणा-रूपी समुद्र में ऊब-डूब रहे थे। ऐसे ही समय में एक महाशय कथा सुनने आये और पंडितजी के समीप ही बैठकर कथा सुनने लगे। ज्यों-ज्यों पंडितजी कहते जाते थे, त्यों-त्यों वह महाशय रोते जाते थे। पंडितजी ने सोचा कि यह कोई बड़ा भारी भक्त है, जो इसका कोमल हृदय कथा सुनकर मोम की तरह पिघल रहा है। उधर और साथियों ने पूछा—"भाई! अपना प्रेम मुझसे क्यों नहीं कहते? मन ही मन क्यों रोते हो? अपने प्रेम की कथा

तो कहिये ?" यह सुन श्रोता महाशय ने रोते-रोते कहा—"भाइयो ! पंडितजी जो हिल-हिलकर कथा कह रहे हैं, इससे जो उनकी लम्बी दाढ़ी हिलती है, उसे देख-देख मुझे अपने मरे हुए बकरे की याद आती है। उसकी भी दाढ़ी ऐसी ही थी। इसीलिये मैं रोता हूँ।" यह सुनकर सभी हँस पड़े और पंडितजी भी लज्जित हो सिर नीचा करके श्रोताओं की अयोग्यता पर पश्चात्ताप करने लगे। जब कथा समाप्त हो गई, तो एक दूसरे महाशय पूछते हैं—"पंडितजी ! सीता केकी जोय रही।" यह सुन पंडितजी जरा व्यंग लिये हुए बोले—"वाह ! क्या पूछना है, सारी रामायण हो गई सीता किसकी जोय ?" अन्त में परसाद बँट गया, तो सब लोग चलने लगे। चलते-चलते एक तीसरे महाशय पंडितजी को प्रणाम करते हुए बोले—"पंडितजी, रावण राक्षस था या राम ?" यह सुनते ही पंडितजी क्रोध से लाल हो गये। उनसे रहा न गया, झट बोले—"न रावण राक्षस था और न राम ही थे। राक्षस तो हम हैं, जो तुम अयोग्यों को कथा सुनाते हैं। भला अदरक का स्वाद कभी बन्दर जान सकता है ? यह कहकर पंडितजी ने झट पोथी-पत्रा सँभाल घर का रास्ता लिया।

आजकल के श्रोता चार प्रकार के हुआ करते हैं—एक तो श्रोता ही हैं, जो ध्यानपूर्वक कथा सुनते हैं और वैसे ही अपने आचरण को सुधारते हैं। दूसरे वे महाशय हैं, जिनको सोता के नाम से पुकारा जाता है। वे एक कान से तो कथा सुनाते हैं ; परन्तु सोता के जल के समान दूसरे कान से निकाल देते हैं। उन पर कथा का प्रभाव उसी समय तक रहता है, जब तक कि वे कथा-मंडप में बैठे रहते हैं। चलते समय वे अपने वस्त्रों को खूब

झाड़ देते हैं कि जिससे कहीं कथा का भाव मेरे घर तक न पहुँच जाय। तीसरे सरौता महाशय हैं, जो सरौते के समान कथा की बातों को काटा ही करते हैं। उसमें नाना तरह की शंकाओं को उपस्थित करके व्यर्थ खंडन-मंडन किया करते हैं। चौथे तरह के श्रोताओं की कथा तो पाठक पहिले ही पढ़ चुके हैं। वे कथा की बातों पर ध्यान नहीं देते; किन्तु कोल्हू के बैल के समान उनकी बुद्धि कथा सुनते समय हिमालय पहाड़ पर चरने के लिये चली जाती है।

७१–सोधापन

एक बादशाह ने एक बड़ा मकान दरबार के लिये बनवाया। उसके लिये एक शहतीर ऐसा बड़ा दरकार हुआ कि पास के शहरों में भी कहीं न मिला। बादशाह ने अपने सभी सरदारों को हुक्म दिया कि कोई अच्छा शहतीर ढूँढ़कर लाओ। बड़ी तलाश के बाद एक स्थान से वैसा ही शहतीर आया। बादशाह को मकान बनवाने का बड़ा शौक़ था, इसलिये प्रातः के समय वे स्वयं दरबारियों के साथ उसको देखने के लिये चले। वहाँ सैकड़ों मनुष्य इकट्ठा थे। इतने में एक बावला सा फ़क़ीर शहतीर के पास आया और झुककर चुपके से कुछ कहा और हट गया। यह देखकर सभी दंग रह गये; परन्तु किसी को पूछने का साहस न हुआ। अन्त में बादशाह ने खुद पूछा—"ऐ महाराज! आपने शहतीर से क्या कहा और उसने क्या उत्तर दिया है?" बादशाह के पूछने पर फ़क़ीर ने कहा—"मैंने यही पूछा था कि ऐ शहतीर! तुझमें ऐसी क्या खूबी है कि जो इतनी दूर से तलाश करके तुझे मँगाया और बादशाह खुद दरबार-समेत तेरे पास तुझको

देखने के लिए आया है।" तब शहतीर ने मेरे प्रश्न के उत्तर में कहा कि महज़ "सीधापन"।

पाठको ! इस सीधापन पर खूब ध्यान दीजिये और अपना इसके साथ मिलान कीजिये कि क्या आप में भी सीधापन है ? मनुष्य के सारे गुणों से बढ़कर सीधापन है। मनुष्य दीन, हीन और हर तरह से अयोग्य होने पर भी केवल सीधापन से ही सम्मान का अधिकारी बनता है। किसी कवि ने क्या ही अच्छा कहा है—

सीधापन सब सों भलो, सीधापन जो होय।

जस दुतिया के चन्द्र को सीस नवै सब कोय॥

परन्तु यहाँ तो यह दशा है कि चाहे पेट के लिये रोटी न मिले, इसकी चिन्ता नहीं; परन्तु ठाट-बाट में किसी बात की कमी न रहे। हमें तो नित्य अपने ठाट-बाट के ही सजाने में सारा समय व्यतीत हो जाता है। प्रातः होते ही बूट साफ़ करना, स्त्रियों की भाँति माँग सँवारना, व्यर्थ के झंझटों में पड़े रहने से हमें सन्ध्या करने तक की भी फ़ुरसत नहीं मिलती। हाय ! इतना अधःपात होते हुए भी यदि हम अपनी जाति, और अपने देश की उन्नति चाहें, तो आप ही कहिये क्या यह मृग-तृष्णा नहीं है ? भाइयो, आप सचमुच भारत का सुधार करना चाहते हैं, तो तन-मन से लग जाइये। ठाट-बाट को त्याग दीजिये और सीधापन को ग्रहण कीजिये।

७२–धूर्तों की धूर्तता

एक ब्राह्मण ने एक गाँव में जाकर अपने लिये एक बकरा ख़रीदा। वह उस बकरे को अपने कंधे पर रक्खे हुए अपने

गाँव को जा रहा था। रास्ते में उसे तीन-चार बदमाश मिले। उन्होंने सोचा कि बिना मार-पीट किये बकरा हमारे हाथ में आ जाय, तो अच्छा है। अतः उन सबों ने आपस में विचार करके एक मन्सूबा बाँधा, जिससे उनका काम निकल सकता था। तीनों बदमाश रास्ते में थोड़ी-थोड़ी दूर पर वृक्षों के नीचे बैठ गये। ज्यों ही ब्राह्मण पहले वृक्ष के नीचे पहुँचा, तो एक बदमाश, जो वहाँ बैठा था, आगे बढ़ा और बोला—"महाराज! यह क्या बात है? आप ब्राह्मण होकर एक कुत्ते को अपने कन्धे पर बिठाये लिये जा रहे हैं। कुत्ता तो ऐसा जानवर नहीं है कि ब्राह्मण उसको हाथ लगाये।" यह सुनकर ब्राह्मण ने कहा-"क्या खूब, यह कुत्ता है या बकरा! क्या तुम्हें दिखाई नहीं देता?" धूर्त ने कहा—"यह कुत्ता है।" मगर ब्राह्मण ने कुछ खयाल न किया और आगे बढ़कर चला गया। कुछ दूर जाने पर दूसरा ठग मिला। उसने भी आश्चर्य के साथ पूछा—"महाराज! आप इस कुत्ते को अपने कन्धे पर बिठाये क्यों लिये जाते हैं? ऐसे म्लेच्छ जानवर को उठाकर आप अपने को क्यों अपमानित कर रहे हैं। अगर आप ऐसा कर्म करेंगे, तो कोई आप को प्रणाम तक न करेगा।" ब्राह्मण ने कुछ न कहा; लेकिन बकरे को जमीन पर खड़ा करके एक बार उसको सर-से-पाँव तक देखा; फिर अपने कन्धे पर उठाकर रख लिया और चल दिया। वह कुछ दूर पहुँचा होगा कि इतने में तीसरे धूर्त ने आकर उस ब्राह्मण को बहुत भला-बुरा कहा—"क्यों जी, यह क्या बात है; तुम एक ओर तो ब्राह्मणों का जनेऊ धारण किये हुए हो और दूसरी ओर कुत्ता सर पर बिठाये लिये जाते हो। तुम ब्राह्मण नहीं, चाण्डाल हो और इसी कुत्ते

की मदद से शिकार मारते हो; शर्म! शर्म!! शर्म!!!" जब ब्राह्मण ने यह सुना, तो मन में कहने लगा—"आज किसी देवता ने मेरी आँख खराब कर दी है कि मुझे उलटा दिखाई देता है। क्या अकेले मेरे ही होश-हवास दुरुस्त हैं और ये सब अंधे हैं?" यह कहकर उसने बकरे को जमीन पर पटक दिया और पास ही एक नदी में नहा-धोकर तथा गायत्री मन्त्र से शुद्ध होकर अपने गाँव को लौट गया। जब ब्राह्मण चला गया, तो बदमाशों ने भी बकरा लेकर अपने घर का रास्ता लिया।

इस दृष्टान्त से यह परिणाम निकलता है कि मनुष्य को हर दशा में अपनी ही आँखों का विश्वास करना चाहिये; किसी के बहकाने में आकर अपने कामों को छोड़ देना महा मूर्खता है। संसार में ऐसे धूर्तों की कमी नहीं है। पाठकों को उनसे बचना चाहिये।

एकबुद्धिर्भिद्यते हि प्रायशो बहुवक्तृभिः।
द्विजोयथा भिकथितो बुद्धिमा जात्मिकांजहौ॥

७३—पाँच आने में प्राण

एक नगर में एक कृपण सेठजी रहते थे। उनकी कृपणता के कारण उनके पास कुछ द्रव्य भी एकत्रित हो गया था। एक दिन उनकी स्त्री ने कहा—"आप गया जाकर अपने पुरुषों को पिण्डा दे आवें; क्योंकि जो गया न गया, सो कहूँ न गया। इसलिये आप इस वर्ष अवश्य गयाजी जाकर अपने पितरों का उद्धार कर आवें।" यह सुनकर सेठजी बहुत घबराये और बोले—"तुम स्त्री हो; यह नहीं जानती कि गया जाने में

१००) रुपये से कम खर्च न पड़ेंगे और मैं एक कौड़ी भी खर्च नहीं करना चाहता।" परन्तु सेठानी ने जब बहुत हठ किया, तब कहीं जाकर आप गया जाने के लिये तैयार हुए और चार आने पैसे लेकर आप गया को रवाना हुए। कुछ दूर जाकर उन्होंने चार आने की शाक-मूली मोल लेकर वेच लिया। झट चार आने के पाँच आने हो गये। दिन-भर एक पैसे के चने खा-कर रह जाते; किन्तु व्यापार को उन्होंने जारी ही रक्खा। इस प्रकार वे गयाजी पहुँचे। "व्यापारे वसति लक्ष्मीः" के अनुसार उस समय उनके पास ग्यारह रुपये हो गये। सेठजी ने मन में सोचा कि यदि मैं वहाँ पहुँच गया, जहाँ कि पण्डे-पुजारी गया-श्राद्ध कराते हैं, तो यह मेरी कठिन कमाई के ग्यारह रुपये जाते रहेंगे; साथ ही चार धक्के भी लगेंगे। इसलिए ऐसी जगह चलना चाहिये कि जहाँ कोई पण्डा-पुजारी न हों। ऐसा विचारकर आप श्मसान-घाट पर जा पहुँचे। सुनसान स्थान में इधर-उधर देखकर झट कपड़े उतार जल में घुसे। डुबकी लगाकर ज्योंही आपने सिर पानी से बाहर किया त्योंही क्या देखते हैं कि एक पंडा महाराज तिलक लगाये और हाथ में कुश लिये हुए खड़े हैं। अब तो सेठजी बहुत घबड़ाये और बोले—"हाय! जिस आफ़त से बचकर यहाँ आये वही आफ़त सिर पर सवार है!" इतने में पंडा महाराज बोले—"दीजिये सेठजी, कुछ दक्षिणा दीजिये।" सेठजी बोले—"महा-राज, मेरे पास तो कुछ है ही नहीं, दूं कहाँ से? बड़ी कठिनता से यहाँ तक आया, फिर आप कहते हैं कि दीजिये। क्या दूं?" पंडे ने कहा—"जजमान! कुछ नहीं है तो संकल्प ही कर दीजिये। हम आपके घर से ले आवेंगे।" सेठजी और भी विकल हुए। अंत में बहुत कहा-सुनी के बाद बोले—"अच्छा!

चार आने का संकल्प कर दीजिये।" पंडा बोला—"नहीं जजमान नहीं, भला बार-बार गया आना पड़ता है? कुछ और बढ़ जाइये।" सेठजी मन-ही-मन पंडे को गाली देते हुए बोले—"अच्छा दो पैसे और सही।" पंडा—"दो पैसे का क्या पढ़ूँ, कुछ और भी बढ़ जाइये।" अब तो सेठजी मारे क्रोध के लाल हो गये और झुँझलाकर बोले—"भाई! तुम तो जान लिये जाते हो; पढ़ो, संकल्प पढ़ो; पौने पाँच आने ही सही।" पंडे ने कहा—"जजमान, पाँच आने तो पूरे कर दो।" बहुत देर के बाद सेठ ने कहा—"अच्छा पाँच ही आने सही।" पंडाजी ने "ओं विष्णुर्विष्णुः" इत्यादि पढ़कर संकल्प छुड़वा दिया। सेठजी जान-बचाकर घर भागे। रास्ते में भी व्यापार करते-कराते ३०) रुपया लेकर घर पहुँचे। स्त्री ने पूछा—"आप तो चार ही आने ले गये थे, तीस रुपये कहाँ से मिले?" सेठजी ने अपनी सारी करतूत कह सुनाई।

कुछ ही दिनों बाद पंडाजी सेठजी के द्वार पर आ धमके और आवाज़ दी कि सेठजी हैं; सेठजी हैं? सेठ के लड़के ने पूछा—"कौन है?" पंडे ने पूछा—"क्या सेठजी घर पर हैं?" लड़के ने कहा—"हाँ" तब पंडे ने कहा—"जाकर सेठजी से कह दो कि गयावाला पंडा अपनी दक्षिणा माँगता है।" लड़के ने जाकर ज्यों-की-त्यों पंडे की बात सेठ से कह दी। सेठ ने कहला भेजा कि इस समय हम बीमार हैं, फिर कभी आना। सेठजी का संदेसा सुनकर पंडे ने कहा—"बच्चे! जाकर सेठजी से कह दो कि हम चिकित्सा-शास्त्र के पंडित भी हैं। एक अपयश की गोली देने में सेठजी आप ही अच्छे हो जायँगे।" लड़के के द्वारा सेठजी यह बात सुनकर बहुत व्यग्र हुए और मन-ही-मन कहने लगे कि यह कमबख्ती

कहाँ से आई"। कुछ देर सोच-विचार के बाद आपने कहला भेजा —"सेठजी असाध्य हो चुके हैं। कुछ ही देर के मेहमान हैं। अब आप दवा क्या कीजियेगा। जाइए, अपने घर का मार्ग लीजिये।" पंडा महाशय बोले—"अच्छा, तो भाई अब हम सेठजी का क्रिया-कर्म भी कराकर जायँगे। पोथी-पत्रा हमारे पास मौजूद ही है। हमारे जजमान ठहरे। अच्छा होगा कि उनके अंत्येष्टि में हमारा हाथ लग जाय। जाओ कह दो।" लड़के ने पंडे की बात सेठजी से कह दी। अब तो सेठजी मन-ही-मन मसूसकर रह गए और कहने लगे कि यह कहाँ का यमदूत आया। यह तो हम से भी बढ़कर मूजी है। अंत में उन्होंने सोच-विचारकर लड़के से कहा—"अच्छा, अब तुम मेरी अर्थी-वर्थी सजाओ और माँ-बेटे रोने लगो।" सेठ की यह बात सुन उनकी स्त्री ने समझाया कि भला तुम यह क्या तमाशा कर रहे हो ? पाँच आने पैसे के लिये झूठ-मूठ मर रहे हो। भला हमसे रोते भी तो नहीं बनेगा। यह सुन सेठजी बोले—"इस मंत्रोपदेश की कोई ज़रूरत नहीं। चाहे तुम रोओ या न रोओ, मुझसे एक पैसा भी नहीं दिया जायगा। अगर न रोओगी, तो समझ लो डंडे की चोट से तुम्हें रुलाऊँगा।" स्त्री ने सोचा—"सचमुच यह बड़ा दुष्ट है। यदि इस तरह नहीं रोती हूँ, तो यह मार-मारकर रुला-वेगा। इसलिये रोने ही में भलाई है।" यह सोचकर सेठानी 'सेठ-सेठ' करके रोने लगी। अड़ोस-पड़ोस के लोगों ने अर्थी बनाई और "राम-राम सत्य है" कहते हुए श्मसान को चले। पीछे-पीछे पंडाराम भी "राम-राम सत्य है" चिल्लाते हुए चले। वहाँ जाकर लोगों ने चिता सजाई। जब सभी कार्य्य पूर्ण हो गये और केवल आग ही लगाने की देरी थी, तो

पंडे ने लड़के से पूछा—"ज़रा अपने बाप से फिर पूछो कि मेरी दक्षिणा पाँच आने देते हैं या नहीं।" लड़के ने जाकर फिर बाप से कहा। बाप ने उत्तर दिया—"मैं एक कौड़ी भी नहीं देता, जाकर जो चाहो करो।" पंडे महाशय ने चिता में आग लगाते हुए कहा—"भाई लड़के! एक बार फिर पूछ लो, नहीं तो फिर 'स्वाहा-स्वाहा' की आहुतियाँ लगने लगेंगी।" किन्तु सेठजी क्या उत्तर देते हैं—"बकने दो, मैं एक कौड़ी भी न दूंगा; आग लगाओ।" लड़के ने फूस का कूँधा लेकर उसमें अग्नि रख फूँक मारकर सर की ओर से पैरों की ओर भी अग्नि लगा दी; परन्तु सेठजी दम साधे पड़े ही रहे। अंत में पंडा महाराज हार मानकर बोले—"मैं तो तुझ से याचना करने आया था, पर तू ऐसा कृपण है कि हठ के मारे पाँच आने के लिये प्राण त्यागने को तैयार है। अरे भाई! अगर तुझे कुछ माँगना है, तो मुझ से माँग ले। व्यर्थ जीवन क्यों बरबाद करता है?"

यह सुनते ही सेठजी बोले—"नहीं महाराज! मुझे और कुछ नहीं चाहिये। अगर आप हम पर दया कर सकें, तो वही अपनी दक्षिणा के पाँच आने छोड़ दीजिये।" सेठजी की बातें सुन पंडा महाराज हँसते हुए बोले—"जा बुद्धे! मैंने अपनी दक्षिणा तुझे दान दे दिया; उठ और अपने घर जा।"

पाठको! आपने देखा, संसार में कैसे-कैसे कृपण होते हैं, जो केवल पाँच आने में प्राण त्यागने को तैयार हैं। कहकर पीछे इनकार कर देना तो एक मामूली सी बात है। वे यह नहीं जानते कि वाक्य-दान ही सब दानों से सर्वोपरि है।

कृपणों की दुर्दशा वर्णन करते हुए किसी हिन्दी के कवि ने कैसा अच्छा कहा है—

द्रव्य पाय के देत नहिं, और करें नहिं भोग।
निश्चय उसकी संपदा, होत और के योग॥
होत और के योग, दण्ड वहु राजा माँगे।
आगि लगे जरि जाय, चोर वंचक लै भागे॥
भाँति-भाँति के दुःख उसी के कारण पावे।
वा धन ही के काज मरे दुर्गति में जावे॥

७४—तपस्या राख में मिल गई

एक साधु को एक वेश्या ने वश में कर लिया। अब वह महात्मा अपनी सारी तपस्या को तिलांजलि दे उसी रंडी के पीछे-पीछे कामासक्त हो घूमने लगे। एक वार वह दोनों धूनी के पास बैठे हुए आग ताप रहे थे और वीच-वीच में हास्य-रस की पुट देकर कुछ-कुछ मनोविनोद की बातें भी हो रही थीं। रंडी की साड़ी का एक कोना नीचे धूल में सन रहा था। जव महात्माजी ने देखा तो झट बोल उठे—"अरे, कहाँ बैठी हो? तुम्हारे ये रंग-रँगीले दामन राख में सन रहे हैं।" रंडी भला कव चुप रहती? चट बोल उठी—"वल्ला, आपकी तो अमूल्य तपस्या ही राख में मिल गई। फिर हमारे इन कपड़ों की क्या फिक्र करते हो?" यह सुनकर महात्माजी पानी-पानी हो गये। क्या इस श्रेणी के लोग इस छोटे से चुटकुले से कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे?"

७५—चतुर भाँड़

एक कृपण सेठजी के यहाँ एक दिन एक भाँड़ आया। उसने गा-बजाकर सेठजी को प्रसन्न किया; परन्तु सेठजी पूरे कृपण थे। देने का तो वे नाम ही नहीं जानते थे, साथ ही बातूनी भी थे। सोचने लगे कि कोरी बातों में क्या लगता है; बातों से ही उसकी सराहना करूँ। ऐसा सोचकर उसकी प्रशंसा करने लगे। इतने में नौकर ने आवाज़ दी—"सेठजी! भोजन तैयार है।" सेठजी ने सोचा कि अभी यह भाँड़ बैठा हुआ है। अगर इस समय खाता हूँ, तो इसे भी देना पड़ेगा। ऐसा विचारकर उन्होंने नौकर से कहा—"मेरे सिर में दर्द है। थोड़ी देर के बाद भोजन करूँगा।" ऐसा कह आप चादर तान चारपाई पर लेट रहे और घर्र-घर्र नाक बजाने लगे कि जिसमें भाँड़ चला जाय। भाँड़ भी कोई मामूली न था। उसने सारा रहस्य जान लिया और सेठ के पैताने जाकर आप भी पड़ रहा। कुछ देर के बाद सेठ ने सोचा कि शायद भाँड़ अब नहीं है, इसलिये उन्होंने सोते-ही-सोते नौकर से पूछा—"क्या वह जंजाल गया?" नौकर अभी बोलने ही वाला था कि बीच में भाँड़ ने उठकर सेठ को सलाम किया और कहने लगा—"बलैया लेऊँ, यह बलाय तो चरणों में लगी है, बिन खाये कब हटेगी।" सेठजी यह सुनकर लज्जित हो गये और हार मानकर उनको खिलाना ही पड़ा। इसी दृष्टान्त के भाव पर एक कवि की कैसी अच्छी उक्ति है—

> कृपणोपि द्रवीभूत चित्तोधृष्टनिरस्ते वितः।
> भयाद्यथागायकेन मोदितो बद्दं दाद्धनम्॥

७६–माया

प्रातःकाल का समय था, सूर्य्य की किरणों से कमल-पुष्प अच्छी तरह खिल गये हैं, शीतल मंद सुगंधित हवायें भी अपनी मनोहरता से संसार को मुग्ध कर रही हैं। ऐसे समय में भ्रमर भी मधु की लालच से कमल-पुष्पों पर जा जा बैठे; परन्तु सुगंधि के वश वे इस प्रकार मोहित हो गये कि पल-पल जाते-जाते सूर्य्यास्त हो गया। यह सभी जानते हैं कि सूर्य्यास्त हो जाने पर कमल-पुष्पों के सम्पुट वन्द हो जाते हैं। नियमानुसार कमल के फूल वन्द हो गये। अव उसी में भौंरे जो मधु की मधुरता में मस्त हो रहे थे, वे भी वन्द हो गये। यदि वे चाहते, तो फूलों की पंखड़ियों को काटकर वाहर निकल जाते; परन्तु वे मधु के प्रेम-फाँस में ऐसे फँसे कि वाहर निकल न सके। एक कवि ने कैसा अच्छा प्रेम-फाँस का वर्णन किया है—

वन्धनानि खलु सन्ति वहूनि प्रेम रज्जु कृत बन्धनमन्यत्।
दास भेद निपुणोऽपि पडंघ्रि पंकजे भवति कोश निबद्धे॥

यों तो संसार में अनेकों वन्धन हैं, परन्तु प्रेम-बन्धन सबसे निराला है। बड़े-बड़े शाल के लट्ठों को भेदन करने की शक्ति रखनेवाले भ्रमर कोमल कमल की पंखड़ियों में बँध जाते हैं। अस्तु;

इधर रात्रि हुई, उधर भ्रमर कमल-पुष्प का वन्दी हुआ यह सोच रहा है कि जब प्रातः होगा, सूर्य्य निकलेंगे और कमल का मुँह खुलेगा, तो मैं निकल जाऊँगा। अभी वह इस सोच-विचार में था कि जंगली हाथी पानी पीने के लिये आया और वह कमल उसके पैरों तले दबकर टूट गया। बेचारा भ्रमर भी पंच-तत्वों में मिल गया।

.ठीक इसी प्रकार मनुष्य संसार के माया-फाँस में फँसकर अपने को भूल जाता है। यदि वे चाहें, तो माया को त्याग इस संसार से आज़ाद हो जायँ; किन्तु माया का परदा उनके ज्ञान-चक्षुओं पर ऐसा पड़ा रहता है कि वे सोचते हैं कि कल करेंगे, परसों करेंगे। इसी कल-परसों में काल आ जाता है और मनुष्य अपने सभी मनोरथों को हृदय में रक्खे-ही-रक्खे मर जाता है। इसीलिये कबीरदास कहते हैं—

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करोगे कब॥

७७-महंत

एक कुत्ते ने मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजी के दरबार में जाकर प्रार्थना की—"महाराज़! अमुक ब्राह्मण ने मुझे निरपराध मारा है, इसलिये आप उसे समुचित दंड दें।" श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा—"तुम्हीं कहो, उन्हें कैसा दंड देना ठीक होगा?" कुत्ते ने कहा—"आप उन्हें कुछ भूमि दे दें, एक मठ बनवा दें और उनको वस्त्राभूषणों से सजाकर और हाथी पर चढ़ाकर उस मठ का महंत बना दें। उनको यही दंड उचित है।" सभा के सभी लोग दंग रह गये। श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा—"अजी! उपकार करनेवाले के साथ तो तुम भलाई करते हो। इसके लिये तो दंड ही देना ठीक होता।" कुत्ते ने कहा—"महाराज! यह क्या कम दंड है? महंत या पुजारी का तो कभी उद्धार ही नहीं होता। मैंने एक बार धोके से मठ के घी का थोड़ा भाग खा लिया, जिसके पाप से मैं इस योनि में हुआ और न मालूम आगे क्या हो। तो यह जब जन्म-भर इस

मठ के धन से भोजन करेंगे तो न मालूम इनकी क्या दुर्गति होगी ?" यह सुनकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ और रामचन्द्रजी ने पूछा—"कुत्ते ! तुम अपनी इस रहस्यमयी कथा को कहो ।" आज्ञानुसार कुत्ते ने प्रणाम करके इस प्रकार कहना आरम्भ किया—"पूर्वजन्म में मैं एक ब्राह्मण का पुत्र था। उस समय मेरी अवस्था ८ वर्ष से अधिक न थी। जाड़े के दिनों में मेरे बाप एक महन्त के यहाँ हवन करने गये। जब वहाँ से लौटे तो घी का कुछ भाग उनके नह में जम गया था। घर आते ही उन्होंने मुझको अपने हाथ से खिलाना आरम्भ किया। चूँकि दाल गरम थी; इसलिये घी भी उसी में पिघलकर मिल गया। बस उतने ही घी के अज्ञानता में खाने से मैं कितनी ही योनियों में फिरता हुआ इस समय कुत्ते की योनि में पैदा हुआ और न मालूम कहाँ तक मेरी दुर्दशा होगी। इसीलिये मैंने सोचा है कि जब यह आयु भर मठ के ही अन्न से जीवन निर्वाह करेंगे तो कभी इनका उद्धार ही नहीं होगा।" यह तो हुआ दृष्टान्त; अब आप शास्त्रों में देखिये कि क्या लिखा है—

श्वानं श्वपचं प्रेतधूमम् देव द्रव्योपजीवनम् ।
स्पृष्ट्वा मठपति चैव सवासो जलमाविशेत् ॥

—याज्ञवल्क्य.

कुत्ता, भंगी, चिता का धुआँ, देवता का अन्न खानेवाले और पुजारी इन लोगों को छूकर मनुष्य वस्त्रों के सहित जल में स्नान करें, तब कहीं शुद्ध होते हैं।

अभोज्यं मठिनामन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणंचरेत् ।
स्पृष्ट्वा देवलकञ्चैवः सवासो जलमाविशेत् ॥

—पद्मपुराण.

पुजारी का अन्न नहीं खाना चाहिये। यदि खा ले, तो चान्द्रायण व्रत करे और पुजारी को छूकर कपड़ों-समेत स्नान करने से मनुष्य शुद्ध होते हैं।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं द्रव्यमन्नं मठस्यच।
वाश्नाति नरकान् घोरान् सेवेत चैक विशांति ॥

—ब्र० पुराण.

जो मनुष्य देव-मन्दिर का पत्र, पुष्प, फल, जल और द्रव्य खाता है, वह इक्कीस बार नरक में वास करता है।

नरकायत मतिश्चेत पौरोहित्यं समाचरेत।
वर्षावत किमन्येन मठ चिन्ता दिनत्रयेत ॥

—पंचतंत्र.

यदि नरक जाने की इच्छा हो, तो एक वर्ष पुजारी का काम करे; अथवा तीन दिन तक मन्दिर की चिन्ता करे।

य इच्छेन्नरके गन्तुं सपुत्रं पशु वान्धवम्।
तं देवश्वधियं कुर्यात गोषु च ब्राह्मणेषुच ॥

—ब्र० पुराण.

जिसे पुत्र, पशु और वान्धवों-समेत नरक भेजना हो उसे मठ का महंत वना दे।

निर्माल्य शंकरादीनां स चाण्डालो भवेद्ध्रुवम्।
कल्प कोटि सहस्राणि पच्यते नरकाग्निना ॥

—पद्मपुराण.

जो विप्र शिव पर चढ़ा हुआ पदार्थ एक वार भी खा लेता है वह अवश्य चाण्डालवत हो जाता है और करोड़ों कल्प तक नरक की अग्नि से जलता है।

चिकित्सकान् देवलोकान् मांस विक्रायिणस्तथा।
विपणेन च जीवन्तो वर्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः ॥

—मनुस्मृति.

हकीम, पुजारी, माँस बेचनेवाले ब्राह्मण को देव और पितृ-कार्य में कदापि निमंत्रण नहीं देना चाहिये।

आदित्यं चंडिका विष्णु रुद्र चैव महेश्वरम्।
उप भुञ्जाँति ये द्रव्यं तेव नरक गामिनः ॥

—ब्र० पुराण.

जो रुद्र, चंडिका, विष्णु और सूर्य का चढ़ावा खाता है, वह नरक-गामी होता है।

देवार्चन परो विप्रो वित्तार्थे वत्सरः त्रयम्।
असौ देवलोको नाम हव्य कव्येषु गर्हितः ॥

—मिताक्षरा.

तीन वर्ष के पुजारी का किसी कार्य में खिलाना पाप है।

यह तो हुई शास्त्रों की बात। अब लोकाचार पर भी ध्यान दीजिये। अब भी लोग महंतों को प्रणाम नहीं करते; बल्कि नमोनारायण करते हैं। जिसका यह अर्थ है—"हे भगवान्! इन्हें देखने से जो कुछ पाप हुआ वह माफ कीजिये।" यह समझ में नहीं आता कि यमराज का पुजारियों के प्रति इतना हार्दिक रोष क्यों है, जिसके कारण उन पर यह कठिन नरक का मार्शल्ला जारी है? क्या हम यह आशा करें कि हमारे पुजारी भाई इस मार्शल्ला से बचने के लिये मठ अथवा उसकी कुरीतियों से असहयोग करेंगे?

७८—बुराई का फल

परघात विचारेण स्वीय घातः प्रजायते ।
साधुं मारयमाणः स्वपुत्र ग्रीवां यथाच्छिनत् ॥

जो मनुष्य दूसरे की बुराई करना चाहता है, उसकी स्वयं बुराई हो जाती है। किसी हिन्दी के कवि ने क्या ही अच्छा कहा है—

"खाड़ खने जो और को ताको कूप तयार।"

जैसे—एक साधु जहाज़ पर सवार होकर द्वारिका जा रहा था। उसके पास एक सौ अशर्फ़ियाँ भी थीं। जहाज़ के मैनेजर ने सोचा कि इसको मारकर सारी अशर्फ़ियाँ छीन लूँ। ऐसा विचारकर उसने उस साधु से कहा—"महाराज! आप जहाज़ के ऊपरी भाग में जाकर आनन्द से सो रहें।" साधु ने इस बात को स्वीकार कर लिया और छत पर जाकर सो रहा। दैवयोग से उस मैनेजर के लड़के को, जो नीचे की तह में सो रहा था, गर्मी मालूम हुई। वह झट उठकर चुप-चाप ऊपर चला गया और उस बेचारे सोते हुए साधु को ठोकर मारकर नीचे उतार दिया तथा आप उसके स्थान पर चादर तान सो रहा। जब सब लोग सो गये और घना अँधियारा छा गया तब मैनेजर साहब उठे और तलवार लेकर ऊपरी कमरे में जा पहुँचे। वहाँ जाते ही उन्होंने एक ही हाथ से साधु के भ्रम में अपने पुत्र को मार डाला। फिर अशर्फ़ियों की तलाश करने लगे; परन्तु उनका कुछ पता न मिला। इतने ही में आकाश में चन्द्रमा का उदय हुआ और चारों ओर उजाला छा गया। प्रकाश में जब उन्होंने देखा तो मालूम हुआ कि यह तो बेटे का शिर है; परन्तु अब क्या हो सकता था?

हाय-हायकर रोने और छाती पीटने लगे। इतने में सवेरा हुआ और बात की बात में यह खबर पुलिसवालों को मालूम हुई। मैनेजर साहब गिरफ्तार कर लिये गये और सबूत मिल जाने पर उनको फाँसी दे दी गई। सच है—जो जैसा करता है, वह उसके आगे आता है। इसीलिये कबीरदासजी आज्ञा देते हैं कि—

जो तोकूँ काँटा बुवे, ताहि बोय तू फूल।
तोकूँ फूल के फूल हैं, वाको हैं तिरशूल॥

७६—हिसाब

दो आदमी स्नान करने के लिये किसी नदी के किनारे गये। उनमें एक बड़ा सीधा-सादा था। उसने दूसरे को अपने १०) देकर कहा कि इसे लिये रहो। मैं अभी स्नान करके आता हूँ। दूसरे ने, जो पक्का ठग था, रुपयों को ले लिया और पहिला स्नान करने चला गया। जब वह वहाँ से स्नान कर लौटा तो उसने अपने रुपये माँगे। दूसरे ने कहा—"अजी, तुम अपने रुपयों का हिसाब ले लो।" पहले ने आश्चर्य से कहा—"अभी रुपये देते देर नहीं लगी फिर हिसाब कैसा?" उन दोनों में इसी प्रकार के वादाविवाद होते रहे। इतने में कुछ लोग आ इकट्ठे हुए और दूसरे से पूछने लगे—"भाई! तुमने इसका रुपया किस हिसाब से ले लिया है?" यह सुनकर उस दुष्ट ने उत्तर दिया—"जनाब! आप लोग देख लीजिये। पहले जब इसने गोता लगाया, तो मैंने जाना कि डूब गया, इसलिये पाँच रुपये देकर एक आदमी को इसके घर भेजा कि वह जाकर उनको इसका समाचार सुनाये। फिर जब यह निकला तो मैंने

फिर एक आदमी को पाँच रुपये देकर दौड़ाया ताकि वह जाकर इसकी खुशख़बरी इसके घरवालों को दे और उनको शोक करने से बचाये। फिर पाँच रुपये इसके जीते रहने की खुशी में एक ब्राह्मण को दान में दे दिया और शेष पाँच रुपये मैंने अपनी मजदूरी में काट लिया। अब आप ही कहिये इनको रुपये कहा से दूं? बस हार मानो झगड़ा टूटा।" इस हिसाब को सुनकर सभी हँस पड़े। ठीक है—

लंपटेनहि धर्त्तव्यं धनं क्वापि विजानता।
स्नानमात्रो धनं सर्वं लंपटेन विनाशितम्॥

अर्थात् धूर्तों को कभी धन नहीं देना चाहिये।

८०—संगत का फल

फ़ारसी का एक छंद है कि—" 'तुख्म तासीर सोहबते असर' अर्थात् जैसा बीज खेत में बोया जायगा वैसा ही फल भी मिलेगा और जैसा साथ किया जायगा वैसा ही प्रभाव भी पड़ेगा।" इसी भाव को लेकर एक हिन्दी के कवि ने कहा है कि—

"स्वातिबूँद सीपी मुकुत, कदली भयो कपूर।
कार के मुख विष भयो, संगति शोभा शूर॥

अर्थात् एक ही स्वाती का पानी सीपी में पड़ने से मुक्ता, केले में पड़ने से कपूर और सर्प के मुँह में पड़ने से विष बन जाता है; अभिप्राय यह है कि जैसा साथ किया जायगा, वैसा ही ढंग भी आयगा।"

जैसे—संगति ही गुण ऊपजे, संगति ही गुण जाय।
बांस फाँस और मीसरी, एकहि भाव विकाय॥

सारांश यह कि मनुष्य को सर्वदा अच्छे के संग रहना चाहिये। भूलकर भी कभी असज्जनों की सभा में नहीं जाना चाहिये।

८१—अहिंसा

एक बार का ज़िक्र है कि कुछ अरब के सिपाहियों ने मुहम्मद साहब का पीछा किया। उस समय मुहम्मद साहब के साथ केवल एक साथी था। उसने कहा—"अब कहीं छिप जाना चाहिये।" मुहम्मद साहब ने कहा—"क्या वे नज़दीक आ गये ?" साथी ने कहा—"हाँ-हाँ; वे बहुत ही निकट आ गये हैं। वह देखिये, आ गये।" यह सुनकर मुहम्मद साहब ने पूछा—"फिर क्या सलाह है ?" साथी ने उत्तर दिया—"हज़रत, जल्दी करें; वह सामने खाँई है। चलिये, उसी में छिप जायँ।" यह कहकर वह साथी उस खाँई में घुसने ही वाला था कि मुहम्मद साहब ने उसे रोककर कहा—"ठहरो।" साथी बोला—"अब ठहरने का समय नहीं है। दुश्मन बहुत समीप आ गये हैं।" मुहम्मद साहब ने कहा—"अरे देखो; यह मकड़ी का जाला है।" साथी ने कहा—"जी हाँ, देखता हूँ; लेकिन मैं इस जाले को तोड़ दूंगा।" यह सुनकर मुहम्मद साहब बोले—"खुदा के लिये ऐसा न करना। गरीब मकड़ी ने इसके बनाने में बड़ी मिहनत की है। इसलिए इसको तोड़ना ठीक नहीं।" यह सुनकर साथी ने क्रोध में भरकर कहा—"अपनी जान बचाने के लिये इसको तोड़ना ही ठीक है। ऐसे समय में अहिंसा का विचार करना उचित नहीं।" मुहम्मद साहब ने नम्रता से कहा—"भाई, यह ठीक है, पर अपनी जान

बचाने के लिये किसी दूसरे को दुःख देना ठीक नहीं। फिर यदि ऐसे समय में अहिंसा का ध्यान न करोगे, तो कब करोगे। यदि खुद ही हिंसा करोगे तो फिर तुम्हारी हिंसा में क्या सन्देह है?" मुहम्मद साहब की यह बात साथी को पसन्द आ गयी और वे दोनों जाले के नीचे जाकर छिप रहे। इसके बाद पीछा करनेवाले सिपाही भी आये; परन्तु यह समझकर कि यदि इस खोह में लोग घुसे होते तो जाला जरूर टूट जाता, लौट गये। उनके चले जाने के बाद मुहम्मद साहब अपने साथी-समेत खाई के बाहर निकले। ठीक है—सभी धर्म तो धर्म हैं परन्तु अहिंसा परम अथवा श्रेष्ठ धर्म है। यथा:—

अहिंसा परमो धर्म्मः

क्या इस उपाख्यान से मुहम्मद साहब के अनुयायी, जो हिंसा के पक्षपाती बन रहे हैं, कुछ शिक्षा ग्रहण करने की कृपा करेंगे? हिंसा के समान कोई भी पाप नहीं है। जिस तरह से हम लोगों को अपने-अपने प्राण प्रिय हैं, वैसे ही सभी जंतुओं के प्राण प्रिय हैं। इसीलिये हमको चाहिये कि किसी की हिंसा न करें। एक कवि का कहना कितना हृदयग्राही है—

"कापर कृपा कीजिये, कापर निरदय होय।
साईं के सब जीव हैं, कीरी कुञ्जर दोय॥"

८२—बुरी सङ्गति

एक वृक्ष पर एक कौवा रहता था और उसी पेड़ के नीचे भूमि पर एक हंस रहता था। कौए ने उस हंस से दोस्ती की। कौए और हंस दोनों की शक्ल-सूरत और स्वभावादि एक दूसरे से भिन्न थे, तथापि वे दोनों एक ही साथ रहा

करते थे। एक दिन एक पथिक कहीं से आ निकला और सुस्ताने के लिये भूमि पर चादर बिछाकर सो रहा। कुछ देर के बाद वृक्ष पर बैठे हुए हंस ने देखा कि पथिक के मुँह पर सूर्य्य की तीखी किरणें पड़ रही हैं इसलिये उसने यह सोचा कि धूप के लगने से इस पथिक की निद्रा टूट जावेगी। इसलिये वह एक डाली पर अपने पंखों की आड़ कर बैठ गया जिस से धूप उसके पंख पर ही लगने लगी और पथिक बेचारा आराम से साये में खर्राटे लेने लगा। परन्तु कौए को यह बड़ा बुरा लगा और नीचे से आकर उस पथिक के मुँह पर मल त्यागकर भाग गया। मुँह पर कौए के मल-मूत्र पड़ने से उस पथिक की निद्रा टूट गई और वह उठकर ऊपर की ओर देखने लगा, तो क्या देखता है कि ठीक उसके ऊपर वृक्ष की एक शाखा पर एक हंस परों को फैलाये बैठा हुआ है। अब तो पथिक ने यह सोचा कि हो न हो मेरे ऊपर मल-मूत्र को त्याग करनेवाला यह हंस ही है। ऐसा विचारकर उसने अपने पास की रक्खी हुई बन्दूक को उठाकर उस निरपराध हंस पर दाग दिया। अब क्या था—वह निरपराध बेचारा उपकारी हंस भूमि पर आ गिरा और उसके प्राण पखेरू उड़ गये। सच है—यदि वह कौए का साथ न करता तो वह बेचारा इस प्रकार बे-मौत क्यों मारा जाता? बुरे की संगति भी खराब ही हुआ करती है। यदि कोई शराब बेचनेवाले की लड़की दूध की ही मटकी लिये हुये क्यों न जाय, पर सब लोग यही समझेंगे कि यह शराब लिये जाती है।

८३-भूत

शब्द मात्रान्नभेतव्यय ज्ञात्वा.शब्द कारणम् ।
शब्द हेतुमभिज्ञाय वेश्याऽप्यासीत्सुपूजिता ॥

केवल शब्द से ही नहीं डरना चाहिये; क्योंकि भूत कोई दूसरी वस्तु नहीं है। भूत केवल भय या शंका को ही कहते हैं। इसी शंका के ही कारण कितने लोग अचानक मर जाते हैं? एक बार एक गाँव के रहनेवालों का यह विचार था कि यहाँ घंटा-कर्ण नाम का एक भूत रहता है जो मनुष्यों को मार डालता है। यथार्थ में बात यह थी कि एक समय कोई चोर घण्टा चुरा-कर लिये जा रहा था। एक चीते ने अचानक उसका पीछा किया जिसके डर से चोर भाग निकला और वह घण्टा उस चोर के हाथ से गिर पड़ा जिसे एक बन्दर उठाकर ले गया और कभी-कभी बजा दिया करता था, जिसको सुनकर लोग समझते थे कि यह भूत है और डरकर बीमार पड़ जाते थे। उन में बहुत से तो ऐसे डर गये थे कि वे अन्तकाल को प्राप्त हो गये। इसी भूठ के भय के कारण गाँववाले घर-द्वार छोड़ भागने लगे। एक बुढ़िया इस बात की टोह में लगी। बहुत खोज करने के बाद उसको मालूम हो गया कि भूत-ऊत कुछ नहीं है, बल्कि बन्दर है जो घण्टा बजाया करता है। जब उसको यह बात मालूम हो गई, तो उस गाँव के ठाकुर के पास जाकर कहने लगी—"महाशय! अगर आप मुझको कुछ पारितोषिक प्रदान करें, तो मैं घण्टाकर्ण को यहाँ से भगा सकती हूँ।" बुढ़िया की इस बात को सुनकर मुखिया बड़ा प्रसन्न हुआ और उसको बहुत-सा धन देने का वादा किया। अब क्या था—बुढ़िया कुछ थोड़े से फल लेकर बन में पहुँची और बन्दर

को खिलाने लगी। जब बन्दर खाने को झुका तो उसके हाथ से घंटा गिर पड़ा। बुढ़िया ने घंटा उठा लिया और गाँव में जाकर सबको दिखलाया। उस दिन से घंटा बजना बन्द हो गया और गाँव में बुढ़िया की बड़ी आवभगत होने लगी।

८४—निन्नानबे का फेर

एक गाँव में एक मोची रहता था। वह चमड़े का काम करके अपना और अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण करता था। उसे गाने का बड़ा शौक था। चाहे जूते बनाता या खाली रहता, सदा सब समय गाता ही रहता। दिन-भर की मज़दूरी से नित्य उसके घर अच्छे-अच्छे भोजन-पक्वान्न आदि बना करते थे अर्थात् उसे सब तरह का सुख था। अपनी मिहनत की बदौलत अच्छे-अच्छे खाने खाता और अच्छे-अच्छे कपड़े पहनता।

उसी के पड़ोस में एक धनी परिवार रहता था। उस परिवार के मालिक एक बड़े धनवान पुरुष थे; किन्तु उनके घर नित्य रूखा-सूखा भोजन बनता और वे कम कीमत के मोटे कपड़े पहनते। उनके लड़के-वाले मोची के लड़कों को खाते-पहनते देख नित्य तरसा करते थे। एक दिन महाजन की स्त्री ने उस महाजन से कहा—"आपके पास यह सब धन व्यर्थ है; क्योंकि एक दरिद्र मोची मज़दूरी करके भी आनन्द से खाता-पहिनता है और इतना धन होते हुए भी हमारे लड़के तरसा करते हैं!" यह सुनकर महाजन ने कहा—"अभी वह निन्नानबे के फेर में नहीं पड़ा है। अगर वह निन्नानबे के फेर में पड़ जाय, तो इसका भी खाना-पीना हमारी ही तरह भूल जाय।" स्त्री ने

पूछा—"निन्नानवे का फेर किसे कहते हैं ?" उत्तर में महाजन ने कहा—"आज मैं तुमको निन्नानवे के फेर की दशा दिखाऊँगा।" यह कहकर उसने उस दिन एक थैली में निन्नानवे रुपये बन्द करके रात के समय उस मोची के घर में फेंक दिया। सुबह को जब थैली मोची को मिली, तो उसने प्रसन्न होकर थैली को उठा लिया और उसके रुपये गिनने लगा। जब उसे यह मालूम हुआ कि इसमें ९९ रुपये हैं तो उसने सोचा कि यदि एक रुपया और मिला दिया जाय तो पूरे एक सौ रुपये हो जायँगे। ऐसा विचारकर उसने उस दिन की कुल मज़दूरी में से एक रुपया बचा लिया और शेष कुछ थोड़े से पैसों में उस दिन उसने अपने परिवार का पालन किया। दूसरे दिन उनके १००) रुपये तो पूरे हो चुके थे; परन्तु उसका लालच बढ़ता ही गया, जिससे उसका खाना-पीना बिलकुल ही बदल गया। जहाँ उसके घर नित्य मोदक-हलुवा बना करता था, वहाँ अब सत्तू पर ही गुज़र होने लगी। ठीक है; किसी कवि ने कहा है—

"नहिं धन धन है परम धन, तोषहि कहहिं प्रवीन।
बिन सन्तोष कुबेरऊ, दारिद दीन मलीन॥"

अर्थात् जैसे-जैसे मनुष्य की आय बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों उसके संचय करने की इच्छा या यों कहिये कि लोभ की बीमारी, बढ़ती ही जाती है। उसकी चिन्ता से खाना-पीना सभी भूल जाता है। मैं यह नहीं कहता कि संचय करना बुरा है और धन इकट्ठा नहीं करना चाहिये; बल्कि मेरी यह राय है कि—"खाय न खरचे सूम धन, चोर सबै लै जाय। पीछे ज्यों मधु मक्खिका, हाथ मलै पछिताय॥" इसकी नौबत न आने पाये।

मोची की यह दशा देख महाजन ने अपनी स्त्री से कहा— "देखो, अब यह भी निन्नानवे के फेर में पड़ गया, जिसके बदौलत उसका खाना-पीना बिल्कुल बदल गया। इसी को 'निन्नानवे का फेर' कहते हैं।" स्त्री ने जाकर देखा, तो सचमुच मोची के रहन-सहन में जमीन-आसमान का अंतर पड़ गया। भगवान न करे कि कोई इस निन्नानवे के फेर में पड़े। प्यारे पाठको! अपनी आय के अनुसार अपने को सुखी रखने का सदा उद्योग करते रहो और साथ ही आगे के लिये कुछ बचा रक्खो। देखो यह दशा न होने पाये कि—

"जोड़ जोड़ मर जायेंगे। माल जमाई खायेंगे॥"

८५—अस्तेय

"साँच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप।
जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदै आप॥"

इस पद्य का सारांश यह है कि सच से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है। ठीक ही है। इस पर एक दृष्टान्त है, जो पाठकों के लाभार्थ नीचे लिखा जाता है।

एक नगर में एक लड़का रहता था। उसकी माँ उसे बहुत चाहती थी। जब वह मरने लगी, तो उसने बेटे को बुलाकर कहा—"बेटा! मेरे पास धन-दौलत नहीं है, जो तुम्हारे लिये छोड़ जाऊँ, लेकिन एक नसीहत यह करती हूँ कि लाख मुसीबत पड़े तब भी झूठ न बोलना और सर्वदा सच ही कहना।" लड़के की उमर उस समय दस या बारह वर्ष से अधिक न थी; परन्तु उसने माँ की बात गिरह में बाँध ली। कुछ दिन के उपरान्त वह लड़का व्यापार करने के लिये घर से

निकला। रास्ते में एक जंगल मिला। जब वह लड़का जङ्गल में पहुँचा, तो मार्ग में उसे चोरों ने घेर लिया। एक चोर ने उससे पूछा—"तुम्हारे पास कितना माल है?" उत्तर में उस लड़के ने कहा—"चालिस रुपये।" चोर ने हसी समझकर उसे छोड़ दिया। फिर दूसरे चोर ने भी आकर वही प्रश्न किया। लड़के ने भी वही जवाब दिया कि मेरे पास चालीस रुपये हैं। चोर ने समझा कि शायद यह मसखरी कर रहा है; इसलिये उसने अपने एक दोस्त को भी बुलाया। दूसरे चोर ने उसकी कमर टटोलकर कहा—"यह झूठा है। इसके पास कुछ नहीं है।" बच्चे ने कहा—"नहीं महाशय! मैं झूठ नहीं बोलता। मेरे पास जरूर चालीस रुपये हैं।" यह सुन-कर चोरों ने फिर टटोलना आरम्भ किया; परन्तु कुछ न मिला। तब तो वे क्रोध से लाल-लाल आँखें कर घुड़कते हुए बोले—"बेवकूफ! मुझसे दिल्लगी करता है?" लड़के ने कहा—"नहीं, आप सच समझें।' मेरे पास जरूर चालिस रुपये हैं। यदि विश्वास न हो, तो देख लीजिये।" चोरों ने पूछा—"रुपये कहाँ हैं?" लड़के ने कहा—"मेरे कोट के अस्तर में सिले हुए हैं।" यह कहकर उसने रुपये निकाल चोरों के सामने फेंक दिये। लड़के की इस सचाई को देखकर चोर दंग रह गये। उनके सरदार ने पूछा—"तुमने सत्य-सत्य क्यों बतला दिया? यदि तुम नहीं बतलाते तो हम लोगों को पता लगाना भी कठिन हो जाता।" इस पर लड़के ने कहा—"मैं अपनी माँ के सामने की हुई प्रतिज्ञा को कभी भी भुला नहीं सकता। इसीलिये मैंने सच-सच कह दिया।"

यह सुनकर चोर घबड़ा गये और कहने लगे—"हाय! तुम बालक होकर भी अपनी माँ के सामने की की हुई प्रतिज्ञा को

पूर्ण करने के लिये सर्वदा सच कहते हो और हम लोग ऐसे अधम हैं कि अपने जन्मदाता परमात्मा के प्रति की हुई अपनी प्रतिज्ञा को भी भूल गये हैं।" सारांश यह कि इस घटना का उन पर इतना प्रभाव पड़ा कि वे उस लड़के के पैर पकड़कर रोने और पछताने लगे। उनको इतनी शर्म आई कि उन्होंने अपने इस पाप कर्म पर सच्चे दिल से प्रायश्चित्त किया। अंत में सब चोरों ने हाथ जोड़कर अपने सरदार से कहा—"जिस प्रकार आप अब तक बुराइयों में हमारे मालिक रहे हैं, उसी तरह अब अच्छे कर्मों में भी हमारे सरदार बने रहें।" अभिप्राय यह कि वे चोर उसी लड़के को अपना गुरू मान तथा सारे झंझटों से आज़ाद होकर परमात्मा के भजन करने में लग गये। देखा आपने—एक बालक ने अपने सत्य-बल से चोर-मंडली को भक्त-मंडली बना दिया। ठीक है—आत्मा की शुद्धता से चोरी आदि बुरे कर्मों का बिलकुल अन्त ही हो जाता है। फारसी के प्रसिद्ध शायर शेख सादी साहब फ़रमाते हैं—

"रास्ती मूजिबे रज़ाय खुदास्त"

एक उर्दू के कवि की भी उक्ति सुनिये। देखिये, कैसा अच्छा भाव है—

रास्ती सीधी सड़क है, इसमें कुछ खटका नहीं।
कोई रहवर आज तक इस राह में भटका नहीं॥

अन्त में एक संस्कृत का पद्य उद्धृत कर इस उपाख्यान को समाप्त करते हैं।

'सत्यम् जयति नानृतम्'॥

८६—आजकल के पण्डित

एक पण्डित 'बड़ा धोता बड़ा पोथा, पण्डिता पगड़ा बड़ा' का उदाहरण बनकर छैल-चिकनियाँ होकर घूमा करते थे। ललाट में बड़ा मलयागिरि का तिरंगा त्रिपुण्ड्र, गले में रुद्राक्ष, तुलसी आदि की छोटी-बड़ी बीसों मालायें, उनकी शोभा को कई गुना अधिक कर देती थीं। लोग समझते थे कि यह बड़े भारी पण्डित हैं। आस-पास के गाँवों में उनका बड़ा आदर होता था। इनके ठाट-बाट को ही देखकर बड़े-बड़े विद्वानों को भी उनके सामने बोलने की हिम्मत नहीं होती थी। यह सब कुछ था; परन्तु वास्तव में वे ऐसे न थे। वे छिपे-छिपे माँस-मदिरा भी उड़ाते। पढ़ने के नाम निरक्षर भट्टाचार्य थे। गाँव में किसी तरह की बात होती बिना दण्ड लगाये न रहते। दान-दक्षिणा और पापों के उद्धार का तो आपने बीड़ा ही ले लिया था। गाय ब्राह्मण मारकर भी लोग आपको दक्षिणा देकर दोष से मुक्त हो जाते थे। एक दिन कुछ लड़के उनके यहाँ जाकर बोले—"महाराज! गदहे के मारने का पाप कैसे छूटेगा?" पंडितजी ने समझा कि अच्छा शिकार हाथ आया। झट बोल उठे—"पाँच गौ, पचीस रुपये, एक मन घी, दो मन आटा और दो ही मन चीनी ब्राह्मण को दान में देना चाहिये।" यह सुन लड़कों ने कहा—"महाराज, आपके ही लड़के संतोष ने तो उसे मारा है। हम लोग तो चुप-चाप खड़े रहे।" पंडितजी अब क्या फरमाते हैं; जरा ध्यान से सुनिए।

"सात पाँच लड़के एक सन्तोष।
गदहा मारें कुछ नहिं दोष॥"

इन्हीं पण्डितजी की एक और कथा सुनिये। एक दिन कसाई के घर कोई काम आ पड़ा, जिससे वह नित्य-नियमानुसार उस दिन पण्डितजी के घर मांस न पहुँचा सका। पण्डितजी स्नान करते समय अपने पड़ोसी की एक बकरी के बच्चे को उठाते आये और गड़ासे से उसे ठोंक-ठाककर पण्डितानी से बोले—"देखो, मैं तो पाठ करने जाता हूँ; मगर तुम इसको अच्छी तरह से तेल-मसाला देकर बढ़िया बनाना।" पण्डितजी यह कहकर सामने की कोठरी में आसन जमा संध्या करने लगे और आँगन में पण्डितानी उसके लिये मसाला पीसने लगीं। इतने में उनकी पड़ोसिन (जिसकी बकरी थी) आग लेने पण्डितजी के घर आई। उसे देख पण्डितजी स्तोत्र का पाठ करते हुए पण्डितानी से इशारे से बोले—

"झाँपनियाँ, झाँपनियाँ, जिनकी हम मारी मेंमनियाँ,
सो तो ठाढ़ी आँगनियाँ; नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः॥"

प्यारे पाठको, देखा आपने पण्डितजी का कपट-चरित्र! "मुख में राम बगल में छूरा" तथा "मन मलीन तन सुन्दर कैसे, विष-रस भरा कनक-घट जैसे" के सिद्धान्तवाले महात्माओं से हमको सर्वदा बचते रहना चाहिये। वे हमारे पापों से हमको उद्धार तो क्या कर सकते हैं; बल्कि उन पर भरोसा रखने से हमारे कई जन्म नष्ट हो जायँगे। मेरा तो विचार यहाँ तक कहता है कि ऐसे पण्डित देश, समाज और जाति को रसातल पहुँचानेवाले हैं, और इनके मुख-दर्शन से न मालूम हमको कितना पाप लगेगा। पाठकों को इनसे सर्वदा बचते रहना चाहिए।

८७—आजकल के साधू

एक गाँव के समीप ही रँगे हुए स्यारों की एक कुटी थी। उसमें बहुत से उजड्ड साधू रहा करते थे। एक बगुला-भक्त उनका सरदार था। कुटी के समीप ही कुछ गन्ने के खेत थे। साधू उसी में से नित्य तोड़-तोड़कर भगवान् को भोग लगाया करते थे। एक दिन उस रँगे हुए बगुला भगत ने अपने एक चेले से कहा—"तू खेत में घुस जा और गन्नों को तोड़ छोटे-छोटे टुकड़े करके निकल आ। यदि कोई आवेगा, तो मैं प्रभाती गा-गाकर तुझको सचेत कर दूंगा।" बाबाजी की इस बुद्धिमानी को सुनकर चेला बड़ा प्रसन्न हुआ और खेत में जाकर उस अद्भुत भगवत-भजन में लग गया। उधर साधू ने देखा कि हाथ में लाठी लिये हुए मालिक आ रहा है; तब तो आप गाना का रूप देकर बोले—

"बढ़ जा साधु, डरा पै बढ़ जा, आय गया संसारी।"

चेलेराम इस गाने को सुनकर चुप-चाप मृतवत् भूमि पर पड़ रहे। जब किसान कुछ दूर चला गया, तब साधू महाराज फिर बोले—

"निकलो साधु डरो मत, याँ उठ गया संसारी।
तोड़-तोड़ के जल्दी लाओ, हो भोजन की त्यारी॥"

इस अन्तरे को सुनकर चेले ने फिर तस्करपना करना आरम्भ किया और धड़-धड़ करके ऊखों को तोड़ने लगा। ऊखों के टूटने का शब्द सुनकर किसान अपने दो साथियों के साथ लाठी लेकर आ पहुँचा। यह देख बाबाजी चेले को समझाते हुए इस प्रकार गाने लगे—

"पेट पटाका हो जा साधू पड़ी जीव पर धारी।
पूरब पश्चिम उत्तर तजकर दक्षिण दिशा तुम्हारी ॥"

अर्थात् भूमि पर औंधे लेटकर दक्षिण की ओर से निकल जाओ। चेले ने वैसा ही किया। यह तो है साधुओं की लीला। जो यह भी नहीं जानते कि साधू कहते किसे हैं? साधू के लक्षण तो यह हैं—

"साधु वही जो काया साधे।
तज आलस अरु वाद विवादे ॥"

पर यहाँ तो पक्के सवाद हैं। जहाँ पेट-पूजा में कमी पड़ी, 'नारि मुए घर संपति नाशी, मूँड़ मुँड़ाय भये सन्यासी' के अनुसार कफनी रँगा और हाथ में चिमटा ले साधू बन माँगने-खाने लगे। आजकल ऐसे-ऐसे निठल्लों की संख्या करोड़ों से अधिक है, जो बिना हाथ-पैर हिलाये बेचारे किसानों का रक्त चूस रहे हैं। यदि इतने ही काम करने लग जायँ, तो कम-से-कम मेरा विचार तो यह है कि आज जो भारत-वासी मुश्किल से दोनों समय पेट-भर अन्न पाते हैं बड़े आनन्द से जीवन व्यतीत करेंगे। इसलिये मेरा कहना तो यह है कि—

रंगे रंगाये स्यार पर, मत करना विश्वास।
यही उपदेश सुनाइबो, जौ लौ घट में स्वांस ॥

८८—दो चेले

एक गुरू के दो चेले थे। उन दोनों में परस्पर बड़ी शत्रुता थी। उनमें से एक गुरू के दाहिने पैर को धोकर नित्य मलता

करता था। इसी प्रकार दूसरा दूसरे पैर को। एक दिन की बात है कि उनमें से एक चेला कहीं चला गया, इसलिये गुरू ने दूसरे चेले से उसके हिस्से के पैर को मलने के लिये कहा। पहले तो उसने इनकार किया; किन्तु पीछे बहुत कहने-सुनने पर उसने शत्रुता के कारण पत्थर से उस पैर को मलना आरम्भ किया। मलते-मलते यहाँ तक नौबत पहुँची कि बाबा-जी दर्द के मारे चिल्लाने लगे; पर वह छोड़ने क्यों लगा। खैर, किसी तरह सवेरा हुआ और दूसरे दिन दूसरा चेला भी आ गया। जब उसे यह बात मालूम हुई, तो वह क्रोध से पागल बन गया और बिना कहे-सुने मुँगरी से मार-मारकर उसके पैर को भी तोड़ डाला। गुरू महाराज हाय-हायकर चिल्लाते ही रह गये; परन्तु उसने इनके चिल्लाने पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। ठीक इसी प्रकार आपस में व्यर्थ विवाद करके मूर्ख सेवक अपने स्वामी के काम को नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं।

प्यारे पाठक! यह तो है दार्ष्टान्त; पर इसके दृष्टान्त पर भी तो जरा ध्यान दीजिये। देखिये—भारत के सभी धर्म, सभी मजहब इसी मूर्खता से आपस में कट-कट मर रहे हैं। यह सभी जानते हैं कि ईश्वर एक है। परमात्मा, खुदा और गाड सभी उसी के नाम हैं। कोई मत ऐसा नहीं है जो उस ईश्वर को प्राप्त करना नहीं चाहता। कोई मजहब क्यों न हो—चाहे हिन्दू हो, चाहे मुसलमान और चाहे ईसाई—सभी का मंजिले मक़सूद एक है अर्थात् सभी को एक ही स्थान पर जाना है; परन्तु हाँ, मार्ग अलबत्ता भिन्न-भिन्न हैं। देखिये एक महाशय कहते हैं कि—

मंदिर में पूजा करो, मस्जिद माथा टेक।
गिरजे में बेबिल पढ़ो, पारब्रह्म है एक॥

अब यहाँ पर यह प्रश्न होता है कि ऐसे समय में हमारा क्या कर्तव्य है? मेरी राय में तो यही बात आती है कि हम चाहे किसी मत के क्यों न हों, लेकिन अन्य मजहबवालों से भी भाई का-सा प्रेम-भाव रखते हुए उसी एक परमात्मा की उपासना करें; नहीं तो ईश्वर, खुदा और गाड के चिल्लाने में हमारी वही दशा होगी जो कि उन मूर्ख चेलों की हुई थी। इसी विचार से कबीर साहब आज्ञा देते हैं कि—

एकहि साधे सब सधै, सब साधै सब जाय।
जो तू सींचे मूल को; फूलै फलै अघाय॥

८६-स्त्री का चेला

एक कृपण सेठ को अपने गुरु महाराज को दक्षिणा "कल देंगे, परसों देंगे" यही कहते हुए सालों बीत गये; परन्तु उन्होंने दी कौड़ी भी नहीं। तब बहुत तंग होने के बाद ब्राह्मणदेवता सेठ की स्त्री के पास जाकर कहने लगे—"जजमान! मेरी दक्षिणा सालों हो गये पर मिली नहीं। क्या आप उनसे कहकर दिलाने में समर्थ हो सकेंगी?" यह सुनकर स्त्री ने कहा—"पल पखवारा घड़ी महीना, नौ घड़िये का साल। जाको लाला काल कहैं, ताको कौन हवाल।" अच्छा लीजिये, आप मेरी इस नथ को ले जाइये और देखिये क्या तमाशा होता है?" गुरुजी नथ लेकर घर चले आये। उधर सेठानी उस दिन बिना अन्न-जल किये उदास हो बैठ रहीं। जब यह खबर सेठ को लगी, तो वह बड़ी चिन्ता में पड़े। निदान, स्त्री के पास जा उससे इस उदासी का कारण पूछने लगे। स्त्री

ने कहा—"न मालूम मेरी नथ कहाँ भूल गई। दूसरी बनवा दीजिये।" सेठजी प्रसन्न होते हुए बोले—"क्या खूब! अभी बढ़िया नथ बनी जाती है।" यह कहकर आपने आदमी से कहा—"तुरन्त एक सुन्दर बहुमूल्य नथ बनवाकर ले आ।" नथ तुरन्त बनकर तैयार हो गई और झट स्त्री को पहनाई गई; तब कहीं जाकर सेठानी प्रसन्न हुईं। दूसरे दिन सेठानीजी अपने गुरु से बोलीं—"कहिये बाबाजी! सेठ सच्चा चेला किसका, आप का या मेरा?" गुरु ने उत्तर में एक श्लोक पढ़ा—

गुरु देवान्नजानाति स्त्रीजितो मोहमाश्रिताः।
गुरवे न ददौ किंचित स्त्री शिक्षातः शतं त्वदात्॥

६०—लपोड़संख

एक नगर में एक ब्राह्मण रहता था। दरिद्रता के कारण उसका निर्वाह बड़ी मुश्किल से होता था। उसकी स्त्री नित्य कहा करती कि कहीं जाकर कुछ कमाओ, जिससे हम लोगों के खाने-पहनने का सुख हो। अंत में ब्राह्मण रोजी की तलाश में घर से निकले; पर गोस्वामीजी तो कहते हैं—"करम कमण्डलु कर गहे, तुलसी जहँ लगि जाहिं। सरिता सागर कूप जल, बूँद न अधिक समाहिं।" चारों ओर घूम आये; परन्तु कहीं धन का ठीक न लगा। अन्त में घूमते-घूमते एक महात्मा से उनकी भेंट हुई। उन्होंने महात्मा से अपनी सारी व्यवस्था कह सुनाई। महात्माजी को दया आई और उन्होंने उस ब्राह्मण को एक बटियां दी और कह दिया—"नित्य इसकी पूजा किया करो। यह बटिया प्रति दिन, तुम्हें एक अशर्फी दिया करेगी।" ब्राह्मण-

देव बटिया लेकर घर चले। रास्ते में वे अपने एक मित्र के घर ठहरे और स्नान-पूजा कर उस बटिया से बोले—

"या कांचनी मुद्रा महारानी एक अशर्फी दीजिये"

यह सुनते ही उस बटिया ने एक अशर्फ़ी दे दी। मित्र यह तमाशा देख रहे थे। उन्होंने सोचा कि किसी तरह यह बटिया मुझको मिल जाती, तो बहुत अच्छा होता। यह सोचकर उसने निश्चय कर लिया कि किसी प्रकार इस बटिया को ले लेना चाहिये। अतः दोपहर को जब ब्राह्मणदेव घर को चलने लगे तो मित्र महोदय उनको रोककर बोले—"मित्र! धूप बड़ी तेज़ है और आप भी बहुत दिनों बाद मेरे यहाँ पधारे हैं। आप मेरे सच्चे मित्र और स्नेही हैं। इसलिये मेरी राय में आप आज रात को मेरे यहाँ ठहर जायँ, जिसमें हमको आपकी सेवा करने का अवसर मिले। कल प्रातःकाल ठंडे में चले जाइयेगा।" ब्राह्मण के हृदय में दाँव-पेंच तो था नहीं; वे ठहर गये। मित्र महोदय ने उनकी बड़ी आवभगत की और जब ब्राह्मणदेव रात को घोर निद्रा में मग्न हुए, तो आपने उनकी बटिया ले ली और उसके स्थान पर एक दूसरी बटिया रख दी। सुबह होते ही ब्राह्मण देवता चल पड़े। रास्ते में उन्हें किसी प्रकार की शंका नहीं हुई। जब आप घर पहुँचे, तो उस कांचनी मुद्रा से नियमानुसार अशर्फ़ी माँगने लगे; पर वहाँ बटिया तो थी नहीं फिर मिलती कैसे? जब अशर्फ़ी नहीं मिली, तो उस ब्राह्मण ने समझा कि शायद महात्माजी ने ही झूठ कहा है; क्योंकि उनका कहना था कि यह बटिया नित्य एक अशर्फ़ी दिया करेगी; परन्तु यह तो एक ही दिन देकर रह गई। यह सोचकर वह उस महात्मा के पास गये और हाथ जोड़कर बोले—"महात्मन्! आपने मुझे बड़ा धोका दिया; क्योंकि आपकी दी हुई बटिया ने एक

ही दिन एक अशर्फी देकर फिर देना वन्द कर दिया।" महात्मा-जी कुछ देर विचारने के बाद बोले—"अच्छा, तुम्हें मैं एक संख देता हूँ। इसे ले जाओ और जहाँ उस बार रास्ते में ठहरे थे इस बार भी वहीं ठहरना और उसे (अपने मित्र को) दिखा-कर इससे अशर्फी माँगना।" महात्मा को प्रणाम कर तथा उस संख को ले ब्राह्मण देवता फिर अपने मित्र के घर गये। वहाँ स्नान-पूजा कर आपने संख से कहा—"हमें एक अशर्फी दो।" संख ने उत्तर में कहा—"दो लो।" यह घटना भी मित्र से छिपी न रही। उन्होंने सोचा कि यह बटिया तो नित्य एक ही अशर्फी दिया करती थी, परन्तु यह तो दो नित्य देता है। इसलिये ठीक तो यही है कि उस बटिया को इनकी थैली में रख इस संख को ही ले लें। इस विचार से उस दिन भी उसने ब्राह्मण को अपने ही यहाँ टिका रक्खा और जब रात हुई तो झट आपने अपने निश्चय के अनुसार संख को ले लिया और उस जगह पर अपनी बटिया रख दी। जब ब्राह्मण को अपनी बटिया मिली, तो वह ईश्वर का नाम लेकर अपने घर को चले और वहाँ पहुँच नित्य उस बटिया से एक अशर्फी ले अपना सुख-मय जीवन व्यतीत करने लगे। अब ज़रा उधर की कथा सुनिये। मित्र महोदय स्नान-ध्यान कर उस संख से बोले—"मुझे एक अशर्फी दो।" उत्तर में संख ने कहा—"दो लो।" मित्र बोले—"अच्छा दो ही दो।" संख ने कहा—"चार लो।" मित्र बोले—"अच्छा चार ही दो।" संख ने कहा—"आठ लो" इसी तरह मित्र साहब जितना माँगते गये, संख भी दूना देने का वादा करता गया और अंत में कहा—

जालाट कांचनीमुद्रा सा गता पद्मसंखिनी।
अहं डपोल संखस्य ददामि न ददाम्यहम्॥

अर्थात् मैं कहता ही भर हूँ, देता एक कौड़ी भी नहीं।

६१-भोज की बुद्धिमानी

पाठकों से महाराज भोज का नाम छिपा हुआ नहीं है। जिस समय उनके पिता मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए अन्तिम-काल की यात्रा के लिये तैयार हो रहे थे, उस समय उन्होंने अपने छोटे भाई मुंज को बुलाकर कहा—"भाई! मैं तो अब कुछ काल का मेहमान हूँ। भोज को मैं तुम्हारी शरण में दिये जाता हूँ। जब तक यह अबोध है, तुम्हीं राज्य का कार्य्य करना और जब यह पढ़-लिखकर सुयोग्य हो जाय, तो नियमानुसार उसे राज-पाट सौंप देना।" मुंज ने इसे स्वीकार किया। फिर कुछ ही देर बाद भोज के पिता शरीर छोड़कर स्वर्गवासी हुए। इनके मरने के बाद मुंज गद्दी पर बैठा और राज्य-कार्य्य सँभालने लगा तथा अपने भाई की आज्ञानुसार भोज के पढ़ने-लिखने का अच्छा प्रबन्ध कर दिया। भोज बड़े परिश्रम से गुरु की सेवा करते हुए विद्या पढ़ने लगे। एक दिन की बात है कि मुंज अपने भतीजे को देखने के लिये पाठशाला गया। वहाँ उसने भोज को सभी विद्यार्थियों में बढ़ा-चढ़ा पाया। राज्य का लोभ कुछ ऐसी-वैसी बात नहीं है। लोग इस लोभ में आकर अपने आपको भूल जाते हैं। इसके उदाहरणों से इतिहास के पन्ने रँगे पड़े हैं—कंस ने राज्य के ही लोभ से अपने पिता उग्रसेन को गद्दी से उतार दिया था; औरंगजेब ने इसी लोभ में आकर अपने बाप शाहजहाँ को क़ैद कर दिया था और वह बेचारा उसी कैद में मर भी गया; इसी लोभ के कारण अलाउद्दीन ने अपने चचा जलालुद्दीन का पेट चीर

डाला था; कहाँ तक कहा जाय—इसी लोभ में कितने राजाओं के प्राण गये; कितनों ने अपने भाइयों को क़त्ल कराया और कितनों ने अपने जन्म देनेवाले बाप को भी इसी लोभ से भूकों मार डाला। मेरी लेखनी में वह शक्ति नहीं है कि जो इन पापियों की कथा लिख सके। सारांश यह कि मुंज के दिल में भी इसी राज-लोभ का संचार हुआ। उसने सोचा कि यदि भोज ऐसा चतुर है, तो एक न एक दिन वह अवश्य अपना राज्य हमसे छीन लेगा।

ऐसा विचारकर उसने भोज को क़त्ल करने की आज्ञा दी। यह समाचार पाते ही नगर में हाहाकार मच गया। प्रजा तथा दरबारियों ने कितना ही समझाया; पर उस अधम मुंज की समझ में एक भी बात न आई और आती भी कैसे; जबकि उसकी बुद्धि पर परदा पड़ गया था। अतः मुंज ने बधिकों से कहा—"तुम भोज को ले जाकर किसी जंगल में मार डालो।" आज्ञा की देर थी, मंत्री बधिकों के साथ पाठशाला में गया और भोज को एक रथ पर बिठा जंगल में ले गया। वहाँ पहुँचकर मंत्री ने हाथ जोड़कर भोज से कहा—"महाराज! मैं आपका पुराना नमकहलाल नौकर हूँ; पर क्या करूँ; कुछ समझ में नहीं आता; क्योंकि मुंज ने यह आज्ञा दी है 'कि आपका सिर उतार लिया जाय। अब आप ही कहिये कि मेरा क्या कर्तव्य है?" भोज यह सुनकर धीरता से बोला—"आपका धर्म यही कहता है कि आप अपने अन्नदाता तथा स्वामी की आज्ञा का पालन कीजिये। हमें मरने का डर नहीं है; क्योंकि संसार में जन्म लेनेवाले को एक दिन अवश्य ही मरना पड़ेगा। इसलिये यह अच्छी बात है कि मैं अभी अपने चचा की आज्ञानुसार मारा जाऊँ;

क्योंकि हमें सन्देह है कि ऐसी मृत्यु फिर नहीं मिलेगी; पर मेरी एक प्रार्थना यह है कि एक पत्र मैं अपने चचा को लिखे देता हूँ। आप इसे ले जाकर उन्हें दे दें। बाद को उनकी जैसी आज्ञा होगी, कीजियेगा। मैं मरने के लिये सर्वदा तैयार हूँ।" यह कहकर भोज ने एक पत्र लिखा और मंत्री ने उसे ले जाकर मुंज को दे दिया। मुंज ने उसे पढ़ना आरम्भ किया। पत्र में और कुछ न था, केवल एक श्लोक था जो पाठकों के लाभार्थ नीचे लिखा जाता है—

"मानधाता क्व महीपतिः कृतयुगेऽलंकार भूतोगतः ।
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्व सौदशास्यान्तकः ॥
अन्येचापि युधिष्ठिरः प्रभृतयो ह्यस्तंगताः भूतले ।
नैके समंगता वसुमती मन्ये त्वया यास्यति ॥

अर्थात् सतयुग में मान्धाता नामी बड़ा प्रतापी राजा, जो पृथ्वी का भूषण समझा जाता था, अब कहाँ है? जिस राम ने समुद्र में पुल बाँध महापराक्रमी रावण का वध किया वह इस समय कहाँ है? हे राजन्, और भी बड़े-बड़े शूर-वीर, युधिष्ठिर, भीष्म, भीम, हरिश्चन्द्र और अनेक महा तेजवान नरेश हुए; पर यह पृथ्वी किसी के भी साथ न गई। परन्तु चाचाजी, मालूम होता है कि आप इसे छाती पर लाद कर ले जायँगे।

जब मुंज ने इस पत्र को पढ़ा, तो उसकी दशा अवर्णनीय हो गयी। उसका चित्त तुरन्त ही बदल गया। इस पत्र का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह तुरन्त दौड़ता हुआ जंगल में पहुँचा और भोज के पैरों पर गिरकर अपने अपराध की क्षमा याचना करने लगा। भोज ने जब बहुतेरा समझाया कि माया में

पढ़ने से सबकी यही दशा हो जाती है, तब कहीं जाकर मुंज को कुछ ज्ञान हुआ और तुरन्त भोज को गद्दी सौंप आप तपस्या करने के लिये जंगल में चला गया।

भोज अपने समय का अद्वितीय शासक था। वह बड़ा विद्वान, साहसी, धीर, वीर, गम्भीर और विद्या-प्रेमी नरेश हुआ। विद्या-प्रेमी तो इतना था कि उसने अपने राज्य में, ढिंढोरा पिटवा दिया था कि—

विप्रोऽपियो भवेन्मूर्ख सतिष्ठतु पुराद्बहिः।
कुम्भकारोपियो विद्वान सतिष्ठतु पुरे मम॥

अर्थात् कुम्हार आदि भी विद्वान हों तो मेरे नगर में रहें और यदि ब्राह्मण भी मूर्ख हो तो मेरे नगर से बाहर चला जाय। इस आज्ञा का फल यह हुआ कि उसके राज्य-काल में इतना विद्या-प्रचार हुआ कि लकड़हारे और जुलाहे तक भी कवि हो चुके हैं।

६२-ईश्वर जो करता है अच्छा ही करता है

एक ग्राम में दो भाई रहा करते थे। उनमें से एक बड़ा शान्त स्वभाव का धार्मिक पुरुष और दूसरा कुटिल स्वभाव का था। पहिला नित्य स्नान-सन्ध्या करता और कठिन परिश्रम करके अपने भोजन के लिये कुछ खेती करता था। दरिद्र होने पर भी वह भूके, लूले, लँगड़े आदि अपाहिजों को खिलाया करता; इससे उसकी दशा शोचनीय थी। उधर दूसरा भाई डाकुओं का सरदार था। डाका मारना ही उसका काम था, इसलिये कुछ ही दिनों में वह बड़ा मालदार हो गया। वह मक्खीचूस तो परले सिरे का था। यदि कोई उसके

धन से मौज उड़ाते थे, तो वह पुलिस के सिपाही थे। ऐसे ही कुछ दिन बीत गये। संयोग से एक दिन दोनों ही एक मार्ग से जा रहे थे। डाकू ने पूछा—"तुम कहाँ जाते हो?" पहिले ने कहा—"अमुक स्थान पर आज धर्म-चर्चा होगी, इसलिए मैं वहीं जाता हूँ। अब आप बतलाइये कहाँ जाते हैं?" यह सुनना था कि दूसरे भाई ने डाटकर कहा—"जाते कहाँ हैं, जाते हैं डाका मारने। मैंने तो तुमसे बार-बार कहा कि मेरे साथ रहा करो और आनन्द से जीवन बिताओ; पर तुमको तो धर्म की चर्चा ही से छुट्टी नहीं मिलती। न मालूम इस धर्म में रक्खा ही क्या है कि जिसके कारण पेट-भर अन्न भी नहीं मिलता। यदि आज भी तुम मेरे साथ चलो, तो एक ही डाके में मैं तुमको मालामाल कर दूं।" यद्यपि उसने बहुत समझाया, पर उस धार्मिक पुरुष ने एक भी न मानी। अंत में लाचार होकर वह डाका मारने के लिये चला गया। संयोग से उस दिन मार्ग में चलते समय उस धार्मिक पुरुष के पैर में एक शूल गड़ गया, जिससे वह महा कष्टभागी हो खाट-सेवन करने लगा। उधर पतित महाशय को उस दिन के डाके में बहुत सा धन हाथ लगा। जब यह साहब घर पहुँचे, तो उन्हें मालूम हुआ कि धर्म-चर्चा सुनने के लिये उनके भाई को शूल का पुरस्कार मिला है। तब वह अपने भाई के घर पहुँचे और बोले "कहिये महाशय, धर्म-चर्चा का यही पुरस्कार है न? देखिये, मैंने उसी समय इतना धन प्राप्त कर लिया कि चाहूँ तो जन्म-भर बैठे-बैठे चैन से जीवन बिताऊँ। कहिये, अब क्या विचार है?" इस बात से उस भाई को बड़ी ग्लानि हुई और लकड़ी के सहारे चलकर वह अपने गुरु के यहाँ पहुँचा और हाथ जोड़कर बोला—"भगवान्! यह कैसा व्यापार है कि जो सदा धर्म, ईश्वर के

ध्यान में लगा रहता है, उसे दुःख मिलता है और जो अपने धर्म से पतित है तथा डाका मारना ही अपना कर्म समझता है, उसे संसार में सुख मिलता है। इसका कारण क्या है ?" गुरुजी इस रहस्य को समझ गये और बोले—"हे पुत्र ! पूर्व-जन्म में तुमने बड़ा पाप किया था, इसलिये तुमको इस जन्म में शूली पर चढ़ना लिखा था ; पर इस जन्म में तुम जो धर्म-कर्म करते हो, इस कारण सूली मिलने की जगह तुम्हारे पैर में शूल लगी है। इसी प्रकार पूर्व-जन्म में तुम्हारे भाई ने बहुत धर्म किया था, जिसके फलस्वरुप उसको इस जन्म में चक्रवर्ती सम्राट् होना लिखा था, पर उसके क्रूर कर्मों के कारण वह सम्राट न हो सका और थोड़ा-सा धन ही मिलकर रह गया। यह सच समझो कि परमात्मा जैसे को तैसा ही फल देते हैं ; इसलिये उसके कर्म को बुरा नहीं समझना चाहिये। वह जो करता है अच्छा ही करता है।" गुरु के इस उपदेश से उसकी सारी शंकाएँ मिट गईं और वह कहने लगा—

श्रयःकरणेऽश्रेयोऽश्रेयः करणे भवेत्सौख्यम् ।
सम्यग दृष्टह्यु भये श्रेयः श्रेयोऽशुभोऽशुभदः ॥

अर्थात् बुरा करने से भला और भला करने से बुरा फल होता है, यह स्थूल बुद्धिवालों का विचार है ; नहीं तो भले का ही अन्त भला होता है।

६३—अपने समान सभी

यादृशस्तादृशम्पश्येज्जनं वै कृषि कृद्यथा ।
गत्वा हंस समीपेषु कृषेदुःखं हि पृष्ठवान ॥

अर्थात् जो जैसा होता है वह दूसरे को भी अपने ही समान जानता है। इस विषय का एक दृष्टान्त यह है—एक कृषक ने, जो जाति का कोइरी था, एक साल अपने खेतों का लगान अपने राजा को नहीं दिया। राजा ने उसे बहुत पीटा और उसे नंगा करके जंगल को खेद दिया। जब वह कोइरी जंगल में गया, तो उसे एक महात्मा मिले। वह परमहंस थे और नंगे बदन एक पवित्र स्थान में बैठकर तपस्या कर रहे थे। कोइरी ने समझा, मालूम होता है कि यह भी हमारी ही तरह राजा-द्वारा देश से निकाले हुए हैं। अतः उसने महात्मा से पूछा कि क्या तू ने भी खेत किया था और तुझसे भी लगान नहीं दी गई थी? महात्मा यह सुनकर मन ही मन कहने लगे कि ठीक है—जो जैसा होता है, उसे दूसरे भी वैसे ही दीखते हैं।

६४—हाँडी और भैंस

दुःखितस्य स्वहास्योक्तया शोकं ह्यपनयेद्बुधः।
यथा समादयामास शाचन्तंमहिषी मृताम ॥

जो बुद्धिमान होते हैं, अपने हास्य से ही दूसरों के शोक को निवारण करते हैं। इस पर एक दृष्टान्त इस तरह है कि एक आदमी की भैंस मर गई। वह अपने साथियों से उसका शोक कर दुःख प्रगट करने लगा। इतने में एक ठठोली पड़ोसी ने उससे इस तरह कहना आरम्भ किया—"भाई! क्या कहते हो, हमें और तुम्हें काली चीज नहीं सहती। आज-कल इन्हीं काली ही चीजों पर ग्रह है। देखो न, तुम्हारी भैंस मर गई, उधर हमारी एक काली हँडिया फूट गई; पर करना क्या होगा?

अब तो संतोष ही करना ठीक है।" यह सुनकर सभी साथी हँसकर कहने लगे—"क्या खूब!"

६५-आजकल के न्यायी

मूर्ख न्यायी मूर्खतया निर्णयं कुरुते यथा।
कृतो द्विजो भारवाही रजको गर्भधारकः॥

अर्थात् मूर्ख न्यायाधीश मूर्खताई से ही निर्णय करता है; जैसे—मूर्ख न्यायाधीश ने ब्राह्मण को तो बोझ लादनेवाला अर्थात् गधा और धोबी को गर्भ-धारण करनेवाला बनाया। इसकी कथा इस प्रकार से है—

मध्यप्रदेश के किसी नगर में देवदत्त नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसकी कमला नाम की एक स्त्री थी। एक दिन देवदत्त प्रातःकाल स्नान करने के लिये नदी के किनारे गया। उधर उसकी स्त्री साग लेने के लिये वाटिका में गई। वहाँ उसने देखा कि उसकी फुलवाड़ी में एक गदहा चर रहा है। यह देख उसने (ब्राह्मणी ने) उस गधे को एक लाठी मार दिया, जिससे उसकी टाँग टूट गई। जब धोबी को यह मालूम हुआ कि मेरे गदहे की टाँग ब्राह्मणी ने तोड़ दी है, तो वह क्रोध से पागल हो गया तथा लाठी लेकर उस वाटिका में जा पहुँचा और लाठियों, तथा मूकों-लातों से उसने ब्राह्मणी को खूब पीटा। ब्राह्मणी के उस समय गर्भ था, इसलिये उसका गर्भ गिर गया और धोबी अपने गदहे को साथ में लेकर अपने घर गया। उधर जब ब्राह्मण पूजा-पाठ करके नदी से घर की ओर चला, तो रास्ते में उसे अपनी स्त्री की दुर्दशा का समाचार मिला। मगर थे तो ब्राह्मण ही

लाठी चलाने की हिम्मत न हुई। अतः बहुत सोच-विचार के बाद आपने उस देश के राजा के दरबार में इस बात की नालिश की कि मेरी स्त्री गर्भवती थी; पर अमुक धोबी ने उसे बहुत पीटा है, जिससे उसका गर्भपात हो गया है। आप इस मामले पर विचार कर उसे न्यायोचित दण्ड दें। राजा ने धोबी को बुलाया और उससे इसका कारण पूछा। धोबी ने उत्तर में कहा—"महाराज! ब्राह्मणी ने मेरे गदहे की टाँग तोड़ दी है। अब वह मेरे योग्य काम के लिये नहीं रह गया; इसलिये इसका दण्ड ब्राह्मण को भी देना उचित है।" जब दोनों ओर से शहादतें गुजर चुकीं और दोनों का अपराध सिद्ध हो गया, तो राजा साहब ने यह फ़ैसला किया कि ब्राह्मणी ने गदहे की टाँग तोड़ दी है, जिससे वह अब काम के योग्य नहीं रहा है। धोबी को इससे बहुत बड़ा नुकसान हुआ है। इसलिये ब्राह्मण को उचित है कि तब तक धोबी का बोझा उठाया करे जब तक कि गदहे की टाँग ठीक न हो जाय; और धोबी को, जिसने ब्राह्मण का गर्भ गिरा दिया है, उचित है कि वही ब्राह्मणी को गर्भ-धारण करावे। यह सुनकर ब्राह्मण और ब्राह्मणी अपनी इज्जत बचाने के लिये ज़हर खाकर मर गये।

पाठको! आपने यह विचित्र न्याय देखा? अब भी ऐसे न्यायियों की कमी नहीं है जिन्होंने सच्चे को झूठा और झूठे को सच्चा कराने के लिये मानों ठेका ही ले लिया है।

६३—अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग

एक बार कुछ साधू कहीं जा रहे थे। वे सभी अलग

अलग सम्प्रदाय के थे। रास्ते में उन्हें एक रोता हुआ आदमी मिला। साधुओं के पूछने पर उसने उत्तर दिया कि मेरा बेटा मर गया है। यह सुनकर साधू उसे समझाने लगे।

पहिला जो बेनवा मत का था, इस प्रकार बोला—

दीद दुनिया का दम बदम कीजे।
किसकी शादी औ किसका गम कीजे॥

इस पर दूसरा साधू, जो वैरागी था, इस प्रकार कहने लगा—

साधू इस संसार में सभी बटाऊ लोग।
काको कीजे मनावनो काको कीजे शोग॥

इसके उपरान्त तीसरा सन्यासी बोला—

आये हैं सो जायँगे राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ि चले दूजे बँधे जंजीर॥

इस पर चौथा अवधूत इस प्रकार कहने लगा—

योगी था वह उठ गया, बाकी रही बिभूति।

यह सुनकर उस वृद्ध ने अपने शोक को दूर किया।

इसी प्रकार की एक और कथा यह है कि एक बार ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र, ये चारों एकत्रित होकर परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। पहिले ब्राह्मणदेव बोले—

राम नाम लड्डुआ गोपाल नाम घी।
कृष्ण नाम मिश्री घोर घोर पी॥

इस पर क्षत्रिय बाबू इस प्रकार कहने लगे—

राम नाम शमशेर बनाकर कृष्ण कटार बाँध लिया।
हरी नाम की बाँधि ढाल को यम का द्वार जीत लिया।

भला वैश्य बेचारे क्यों चुप रहते ? आप फ़रमाते हैं—

राम मेरे पूंजी और कृष्ण मेरे धन।
सूधोहि हरिनाम से लागो मेरो मन॥

अब शूद्र की बारी आई। आपने भी अपना पक्ष इस प्रकार प्रगट किया—

जात पाँत पूछे नहिं कोय।
हरि को भजे सो हरि को होय॥

इस दृष्टान्त का सारांश यह है कि संसार में एक मत नहीं है। जितने आदमी हैं उन सब के मत अलग-अलग हैं। इस कहने का अभिप्राय नहीं है कि उनका अभीष्ट भी भिन्न-भिन्न है। सब का अन्तिम अभिप्राय एक रहते हुए भी सभी अलग-अलग "अपनी-अपनी डफली अपना-अपना राग" अलापते हैं। संसार में जितने मजहब हैं वे सभी एक हैं, परन्तु मूर्ख लोग उनको अलग-अलग समझते हैं और एक दूसरे को बुराइयों को निकालना ही अपने जन्म का असली उद्देश्य समझते हैं। क्या हम आशा करें कि सभी एक ही परमात्मा के ध्यान में मन लगावेंगे।

६७—सौ सयाने एक मता

एक बार बादशाह ने बीरबल से कहा—"लोक में कहावत है कि 'सौ सयाने एक मता'; क्या यह सच है?" बीरबल ने उत्तर दिया—"अवश्य।" तब बादशाह ने कहा—"इसका प्रमाण दो।" बीरबल ने इस बात को सिद्ध करने के लिये एक सप्ताह की मुहलत माँगी और इसकी युक्ति सोचने लगा।

निदान, उसने बादशाह से कहकर एकान्त स्थान में एक हौज़ खुदवा दिया और नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया—"आज रात को सभी नगर-निवासी एक-एक घड़ा दूध लाकर इसमें डाल दें।" जब नगर-निवासियों को मालूम हुआ कि बादशाह की ऐसी आज्ञा है, तो वे बहुत घबड़ाये और यह सोचने लगे कि इतना दूध कहाँ से मिलेगा? यह विचारकर लोगों ने सोचा कि यदि सौ आदमी एक-एक घड़ा दूध उस हौज़ में डालेंगे, तो मेरा एक घड़ा जल ही उसमें काफी है। कोई इसका भेद न पा सकेगा। अब क्या था? सब ने यही सोच दूध की जगह जल भरकर उस हौज़ में डाल दिया। जब सबेरा हुआ तो बादशाह बीरबल के साथ उस हौज़ को देखने के लिये गये। वहाँ जाकर देखते हैं कि हौज़ जल से ही भरा हुआ है। यह देख बादशाह ने बीरबल से पूछा—"इससे क्या मतलब निकला?" बीरबल ने कहा—"वही, सौ सयाने एक मता।" बादशाह ने पूछा—"कैसे?" यह सुन बीरबल ने सब को बुलाया और पूछा—"तुमने जल क्यों डाला?" उत्तर में सब ने यही कहा—"महाराज! क्षमा करें, हमने जाना कि यदि सब दूध डालगे, तो उसमें मेरा जल भी छिप जायगा; पर अब तो मालूम होता है कि सभी का विचार एक था।" अब बादशाह को मालूम हो गया कि बीरबल ने ठीक ही कहा था। इसी दृष्टान्त को लेकर एक कवि ने इस प्रकार से लिखा है—

शतं दक्षा एक मता भवन्ति हियथावने।
[illegible] जले सर्वैर्निपातितम् ॥

६८–बुद्धि का बल

एक बार का दृष्टान्त है कि एक क्षत्री साहब कहीं जा रहे थे। साथ में एक ब्राह्मण और एक नाई भी था। गर्मी के दिन थे और उन लोगों को चलना भी बहुत दूर था। दोपहर का समय हो गया; पर कहीं भोजन का प्रबन्ध ठीक न हुआ। जब भूक का वेग अधिक बढ़ा, तो लोगों ने सोचा कि किसी तरह अपनी-अपनी क्षुधा शान्त करनी चाहिये। यह सोच जो उन्होंने इधर-उधर देखा, तो चने का फला हुआ खेत दृष्टिगोचर हुआ। अब यह राय ठहरी कि इन्हीं चनों में से कुछ उखाड़-कर खाया जाय। निदान ऐसा विचारकर लोगों ने थोड़े से चने उखाड़ लिये और एक स्थान पर किसी वृक्ष के नीचे बैठ-कर खाने लगे। वह खेत एक जाट का था। उधर उसने सोचा—"चलो चने देखते आवें।" यह सोच वह खेत देखने को चला। जब खेत के समीप पहुँचा, तो देखता क्या है कि ये तीनों आदमी चने चबा रहे हैं। अब तो उससे रहा न गया और मारे क्रोध के पागल हो गया; पर कर क्या सकता था? वे तीन जने थे और यह अकेले। अन्त में बहुत देर सोच-विचार-कर उसने निश्चय किया कि बिना बुद्धि से काम लिये काम न चलेगा। अब क्या था? वह जाट उनके पास गया और पहले ब्राह्मणदेव से पूछा—"आप कौन हैं?" उन्होंने उत्तर दिया—"मैं ब्राह्मण हूँ!" यह सुन जाट साहब प्रणाम करके बोले—"महाराज! आप ब्राह्मण हैं, तो ईश्वर की देह ही ठहरे। आपने बड़ा अच्छा किया कि मेरा खेत पवित्र हो गया। यदि आपको और जरूरत हो, तो उखाड़ लीजिये। मेरा अहोभाग्य जो आपके काम आवे।" इतना सुनना था कि

ब्राह्मण देवता बुलबुल हो गये। उधर जाट ने क्षत्री से पूछा— "महाराज! आप कौन हैं?" क्षत्री ने उत्तर दिया—"मैं तो राजकुमार हूँ।" जाट ने उनको भी लम्बी दण्डवत किया और हाथ जोड़कर इस प्रकार कहने लगा—"महाशय! आप क्षत्री हैं, तो हमारे राजा ठहरे। आपने बड़ी कृपा की जो चने उखाड़े। मेरा परिश्रम सफल हो गया जो आपके मुँह लगे। यदि और भी आपको जरूरत हो तो खुशी से उखाड़ ले जाइये।" क्षत्री महाशय भी इतनी ही बात से गद्गद हो गये। अब जाटजी नाई की तरफ़ मुख़ातिब हुए और इस प्रकार कहने लगे—"आप कौन हैं?" नाई ने उत्तर दिया— "मैं तो आप का हज्जाम हूँ।" नाई के इतना कहते ही, वह बुद्धि से काम लेनेवाला जाट, इस प्रकार बोला—"अबे हजामिया! अगर पण्डितजी ने उखाड़ा तो वे हमारे गुरु ठहरे; क्षत्रीबाबू भी ज़मींदार हैं; परन्तु तू ने क्या समझकर मेरे चने उखाड़े? क्या यह तेरे बाप का खेत था?" यह कहकर उस जाट ने हज्जामराम को खूब पीटा। हज्जाम को पिटते देख बाकी दोनों आदमी बहुत खुश हुये और मन-ही-मन कहने लगे कि अच्छा हुआ जो यह पिट गया। बड़ा बदमाश था। जब बाल बनवाने को बुलाओ तो घंटों निकलता ही नहीं था। उधर नाई यह सोचने लगा कि मैं तो मारा गया, पर ये दोनों बच गये। कहीं इनके मुँह पर भी दो-चार जूते लग जाते तो ठीक होता! उधर जाट नाई को पीट क्षत्रीबाबू से कहने लगा—"अगर महाराज ने चने उखाड़ लिये तो वे भगवान् के अंश ठहरे, वे चाहें तो और भी उखाड़ सकते हैं; पर तू ने क्यों चने उखाड़े? क्या हमको लगान नहीं देना पड़ता? क्या हमने परिश्रम नहीं किया है? तेरा खाना तो व्यर्थ है!"

यह कहकर जाट ने उनको भी पछाड़ा और मारे जूतों के उनकी खोपड़ी साफ़ कर दी। मेरे समझ में तो उनको हज्जाम की ज़रूरत ही नहीं रह जायगी। अस्तु; इस प्रकार बाबू साहब भी पीटे गये। अब केवल महाराज ही बच रहे थे। उन्होंने सोचा—"अच्छा हुआ; यह चत्री भी पिट गया। बड़ा टर्रबाज़ था।" उधर बाबू साहब और नाऊठाकुर ने सोचा कि जो हुआ, सो हुआ; अब पंडितजी की भी पूजा हो जाती, तो ठीक था। अभी यह लोग इसी सोच-विचार में थे कि जाट ने ब्राह्मणदेव को भी गला पकड़ जमीन पर पटक दिया और लगा लात-मूके से उनका स्वागत करने। पंडितजी की सारी शेख़ी भूल गई और जाट की मार ने उनको बेकाम कर दिया। इस प्रकार जाट ने अपनी बुद्धि के बल से एक-एक करके सब को पीटा; परन्तु किसी की हिम्मत न हुई कि उसके खिलाफ़ एक भी शब्द कहे। इसलिये कहा है कि बुद्धि में बड़ा बल है। बिना बुद्धि के काम नहीं हो सकता। इसलिये सर्वदा मनुष्य को अपनी बुद्धि से काम लेना चाहिये।

६६—मूर्ख ब्राह्मण

एक ब्राह्मण विद्या पढ़ने के लिये काशी चला। उसने सोचा था कि काशी में बहुत दिनों तक विद्याभ्यास करता रहूँगा और जब आऊँगा तो एक बड़ा भारी पंडित होकर। अतः जब वह काशी में पहुँचा तो इधर-उधर एक उत्तम गुरु को खोजने लगा, जो उसे सारे शास्त्र भली-भाँति पढ़ा सके। एक दिन वह गंगा के किनारे घूम रहा था। उसे देख एक घाट के पंडे ने उसे समीप बुलाकर पूछा—"तुम कौन हो और

इधर-उधर व्यर्थ क्यों घूमते हो?" उस ब्राह्मण ने उत्तर दिया—"मेरा घर अमुक नगर में है और यहाँ विद्या पढ़ने के लिये आया हूँ। इसीलिये किसी उत्तम गुरु की तलाश कर रहा हूँ। यदि आप किसी ऐसे योग्य पंडित को जानते हों, तो कृपा करके बतलाइये।" यह सुन उस पंडे ने यह सोचा कि यह बड़ा बलवान और मूर्ख है। यदि हम इसको अपने फंदे में फँसा सकें, तो अवश्य हमारा बड़ा काम चले। ऐसा विचारकर उसने उस ब्राह्मण से इस प्रकार कहना आरम्भ किया—"यदि तुम सारे शास्त्र के पढ़ने के इच्छुक हो, तो मेरे यहाँ ठहरो और मेरे लिये चन्दन घिसा करो। इसके बदले मैं तुम्हें सभी शास्त्रों को कंठ करा दूँगा।" ब्राह्मण ने मान लिया और उस पंडे महाशय के लिये चन्दन घिसने लगा। कुछ दिन के बाद पंडे ने—"उच्चस्थानेषु-पंडिताः" अर्थात् पंडित लोग ऊँचे आसन पर बैठते हैं; यह पद उस ब्राह्मण को बतलाया। ब्राह्मण देवता यह पद रटने और चन्दन घिसने लगे। इस तरह कुछ दिन और बीत गये। तत्पश्चात् पंडे ने उस ब्राह्मण को दूसरा पद यह पढ़ाया—"महाजनो येन गतः स पन्थः" अर्थात् जिधर से बहुत लोग या श्रेष्ठ लोग जायँ, वही मार्ग उत्तम है। ब्राह्मणदेव ने इस पद को भी कंठ कर लिया। ऐसे ही कुछ दिन और बीत गये। तत्-पश्चात् पंडे ने यह तीसरा पद भी पढ़ाया—"शाकेषु कुलथी श्रेष्ठाः" अर्थात् शाकों में कुलथी का शाक उत्तम होता है। इस पद के पूरा याद हो जाने पर उस पण्डे ने यह पद भी पढ़ाया—"अन्नं ब्रह्म इति श्रुतेः" अर्थात् अन्न ब्रह्म ऐसी श्रुति है। कुछ दिन बाद एक और पद पढ़ाया—"उद्योग मन लक्षणम्" अर्थात् उद्योग करना ही पुरुषों का लक्षण है।

इस प्रकार पढ़ते-पढ़ाते बारह वर्ष बीत गये। तब अंत में उस पंडे ने एक यह भी पद उस ब्राह्मण को पढ़ाया—"स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते" अर्थात् राजा तो अपने देश ही में आदर पाता है, किन्तु विद्वान् सभी स्थानों पर पूजा जाता है। सारांश यह कि उस पण्डे को इधर-उधर के जो कुछ पद याद थे, उसने ब्राह्मणदेव को पढ़ा दिया और इसके बदले उसने बारह वर्ष तक चन्दन घिसाया। जब सारे पद ब्राह्मण को याद हो गये, तो उसने पंडे से कहा "गुरु महाराज! अब और पढ़ाइये।" पर भला गुरुजी और पढ़ाते ही क्या। उनका तो रटा-रटाया सब खर्च हो गया। अतः उन्होंने उत्तर दिया—"अब तुम सारे शास्त्रों के अद्वितीय विद्वान् हो गये। मनमाना बिचारो।" ब्राह्मण यह सुनकर फूला न समाया और हाथ जोड़कर गुरु से घर जाने की आज्ञा माँगी। गुरुजी ने आज्ञा दे दी। अब क्या था; पंडित जी चले। रास्ते में उनकी ससुराल पड़ी। अतः उन्होंने सोचा कि चलो जरा ससुराल होते चलें। ऐसा विचारकर वे अपनी ससुराल पहुँचे। उन्हें देख ससुरालवाले अजहद खुश हुए और बड़े आदरभाव से अगवानी कर उनको अपने घर ले गये। वहाँ उनके लिये बड़ा सुन्दर आसन बिछाकर उन्हें बैठने के लिये कहा। पर वह तो अपनी योग्यता दिखलाने के लिये आतुर हो रहे थे। इसलिये वे "उच्चस्थानेषु पंडिताः" के भाव से किसी उच्च स्थान पर बैठने का विचार करने लगे। इधर-उधर देखने से उनको एक कंडे का टीला दिखाई दिया। झट आप उस पर जा विराजे। पण्डितजी की यह करतूत देख सभी नगर-निवासी हँस पड़े। खैर, ज्यों-त्यों करके आप उस सुन्दर आसन पर बिठाये गये। इसके बाद लोगों

न पूछा—"आपके लिये कौन-कौन सा भोजन बनवाया जाय ?" उत्तर देते हुए आप कहते हैं—"शास्त्र की आज्ञा है कि 'शाकेषु कुलथी श्रेष्ठा' ; इसलिये हम कुलथी खायँगे।" यह सुनकर लोग और आश्चर्य में पड़े। खैर, किसी तरह रात बीती। दूसरे दिन आप सैर करने के लिये बाहर निकले, तो देखते क्या हैं कि कुछ लोग मुर्दा जलाने के लिये जा रहे हैं। अब क्या था ; 'महाजनो येन गतः स पन्थः' याद आ गया और आप भी उनके पीछे-पीछे स्मशान-घाट पहुँचे। वहाँ जब लोगों ने उस मृतक के लिये पिण्ड रक्खा, तो आप "अन्नं ब्रह्म इति श्रुतिः" कहकर उनको उड़ा गये इनके। इस कर्तव्य को देख सभी भौचक्के से हो गये और ताना मारने लगे। खैर ; वहाँ से मुँह छिपाकर आप किसी तरह घर लौटे। उनका साला एक राजा के यहाँ नौकर था। उसने आपसे कहा—"चलिये, राजा के यहाँ चलें। वहाँ मेरा कुछ कार्य है।" आप उसके साथ हो लिये। जब वे दोनों राजा के महल के फाटक पर पहुँचे, तो साले ने इनको एक नवीन बँगले में बैठा-कर इनसे कहा—"कुछ देर तक आप यहाँ तशरीफ़ रखिये। मैं राजा से इत्तिला कर आपको भी बुलवाता हूँ।" यह कहकर साले साहब तो भीतर गये और आप निठल्ले बैठे रहे। इतने में उनको "उद्योगं जन लक्षणम्" का महामंत्र याद आ गया ! तो लगे किवाड़ों के शीशे तोड़ने। उनको शीशा तोड़ते देख सिपाहियों ने उन्हें झट गिरफ़्तार कर लिया। जब यह खबर राजा को मिली, तो उन्होंने मूर्ख जान काला मुँह कर गदहे पर चढ़ाने और नगर में फिराने की आज्ञा दी। इस पूजा को पाकर आप बड़े प्रसन्न हुए और राजा को सम्बोधित कर इस प्रकार बोले—"राजन् !

यह तो ठीक ही है। शास्त्र भी यह आज्ञा देता है कि "स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते" अर्थात् तुम्हारी तो राज ही में पूजा होती है और हम लोगों की सब जगह।" यह सुनकर सब हँसते हुए बोले—"क्या खूब?" ठीक है—

प्रज्ञाहीनस्य पठनं यथान्धस्य च भूषणम्।
अतो बुद्धिमतां शास्त्रम बुद्धेश्चातरस्कृतिः॥

१००—पेटू झा

एक बार एक चौबे के घर किसी सेठजी का न्योता आया, तो उस ब्राह्मण के लड़के ने अपने बाप से कहा—

"ऊर्द्ध्वं गच्छन्ति डकारा अधोवायुर्न गच्छति।
निमंत्रमागतं द्वारे किं करोमि पितामह॥

अर्थात्—खट्टी डकारें आ रही हैं, नीचे अपानवायु निकलती नहीं; फिर भी दूसरा निमंत्रण आया है। हे पिताजी! कहिये, क्या करूँ?" यह सुन पिताजी बोले—

"बालकं बचनं श्रुत्वा निमंत्रणं मन्यते ध्रुवम्।
मृत्यु जन्म पुनरेव परान्नं च दुर्लभम्।

अर्थात्—हे बेटा! निमंत्रण जरूर मान लो; क्योंकि मरकर भी फिर जन्म मिल सकता है; परन्तु पराया अन्न संसार में दुर्लभ है।"

सारांश यह कि वे दोनों फिर सेठजी के यहाँ गये और जहाँ तक गुञ्जाइश थी पेट भरा। जब लौटकर आने लगे, तब बाप ने अपने एक साथी से पूछा—"भैया! जरा देख तो, मैंने किसी दूसरे का तो जूता नहीं पहिन लिया; क्योंकि मुझे

दिखाई नहीं देता।" उत्तर में दूसरे ने कहा—"मुझे तो तुम्हीं नहीं दिखाई देते। क्या मैंने तुम से कम खाया है?" इतने में लड़के ने कहा—"मेरे पेट में तो बड़ा दर्द है।" बाप ने कहा—"थोड़ा सा चूरन खा लेना, अच्छा हो जायगा।" यह सुनकर आप ने कहा—"वाह! अगर चूरन की जगह होती; तो खाँड ही थोड़ी और न फाँक लेते।" यह सुन सभी हँस पड़े। पाठको! आपको भी तलाश करने पर ऐसे-ऐसे सज्जन अनेकों मिलेंगे जो दिन-रात निमंत्रण ही की आशा में बैठे रहते हैं।

१०१—झूठा प्रेम

एक नगर में एक नवयुवक रहा करता था। उसी नगर के समीप एक महात्मा साधु की कुटी थी। वह युवक नित्य वहाँ जाता और उनके सदुपदेशों को बड़े ध्यान से सुना करता था। उसकी सेवा-सुश्रूषा से प्रसन्न होकर महात्माजी सोचने लगे—"यह बड़ा भक्त है। अगर ईश्वर-ध्यान में मग्न हो जाय, तो आये दिनों यह एक बड़ा भारी महात्मा बन जायगा।" ऐसा विचारकर उन्होंने एक दिन उससे कहा—"बेटा! तुम होनहार हो; इसलिये मैं तुमको यह शिक्षा देता हूँ कि इस असार-संसार के माया-जाल से निकल संसार के उपकार तथा भगवत-भक्ति में लग जाओ।" युवक ने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज! मैं अपने माता-पिता का इकलौता पुत्र हूँ। वे मुझे बिना देखे जीते न रहेंगे। इसके सिवा स्त्री है; रो-रोकर मर जायगी। यही नहीं; बल्कि एक छोटा सा पुत्र भी है। स्त्री मेरी बड़ी सेवा करती है और कहती है कि तुम्हीं मेरे प्राण-

आधार हो। तुम्हारे बिना मुख-दर्शन किये अन्न-जल भी ग्रहण नहीं कर सकती। तुम्हीं हमारे जीवन-प्राण हो। वह मेरे बिना, 'जल बिन मीन' की भाँति तड़प-तड़पकर मर जायगी। इसलिये हे महात्मन्! आप ही कहिये कि ऐसे स्नेही माता, पिता, स्त्री और पुत्र को मैं कैसे त्याग कर सकता हूँ। उनका साथ छोड़ना ही बड़ा भारी पाप है। मैं उनको कभी भी नहीं त्याग सकता।" साधू ने कहा—"बेटा! तुम भूलते हो। क्या नहीं जानते कि यह संसार असार है। कोई किसी का कुछ नहीं है। कौन किसका बाप और कौन किसका बेटा? यह तो झूठी माया है। दिखावटी प्रेम है। नहीं तो किसी का किसी के प्रति कुछ भी शुद्ध प्रेम नहीं है।" यद्यपि महात्माजी ने बहुत-कुछ समझाया; पर युवक के ध्यान में कुछ भी न आया और आता भी कैसे? उस पर तो झूठे प्रेम का भूत सवार था। उसने कहा—"महाराज! चाहे अन्य माता, पिता, स्त्री, पुरुष में प्रेम न हो तो न सही; परन्तु हमारा परिवार तो प्रेम की रस्सी से इस प्रकार बँधा हुआ है कि एक के न रहने पर शेष सब तड़प-तड़पकर मर जायँगे।" यह सुन साधु ने कहा—"बेटा! अगर तुम्हें विश्वास नहीं है तो हम इसकी परीक्षा करा देंगे। फिर तुम स्वयं देखोगे कि किसमें कितना प्रेम है।" युवक इस बात पर तय्यार हो गया और बोला—"महाराज! अवश्य हम लोगों के प्रेम की परीक्षा कीजिये।" साधु ने उस युवक को प्राणायाम करना सिखाया और जब युवक को प्राणायाम करने का अच्छी तरह से अभ्यास हो गया, तो एक दिन कहा—"बेटा! आज तुम किसी रोग का बहाना कर देना और चारपाई पर पड़ रहना। दूसरे दिन साँस रोक मृतक के समान बन जाना; फिर देखना क्या-क्या रंग दिखाते हैं।" युवक

घर गया और बीमारी का बहाना करके लेट रहा। लोगों ने बड़ीदौड़-धूप और दवा आदि की; पर यह बीमारी ऐसी-वैसी न थी, जो दवाओं से ही दूर हो जावे। निदान दूसरे दिन लोगों ने सुना कि वह युवक जो बाबाजी के यहाँ अक्सर आया-जाया करता था, आज अचानक मर गया। इधर उसे मृतक रूप में देख घरवाले रोने-पीटने तथा हो-हल्ला मचाने लगे। गाँव-भर में हाहाकार मच गया। पड़ोस के लोग सहानुभूति दिखाने आये। कोई कहता—"बड़ा अच्छा लड़का था!" कोई कहता—"भला उसके बिना यह बूढ़े माँ-बाप कैसे जियेंगे!" कोई कहता—"हाय-हाय!! यह उसकी स्त्री भला: उसके बिना कैसे जियेगी, जो एक पल भी बिना देखे अधीर हो जाती थी?"

व यह खबर बाबाजी को मिली, तो आप भी वहीं जा हुँ। उन्होंने भी पहिले तो उसकी गुण-गरिमा का पाठ कर शोक प्रदर्शित किया, बाद को इधर-उधर मृतक का शरीर छूकर कहने लगे—"हम इस लड़के को अभी जिला देंगे; मगर इसमें एक बात है।" माता, पिता और स्त्री ने समझा यही न कि कुछ रुपये माँगेंगे। इसलिये वे बड़े प्रसन्न हुये और बाबाजी के पैर पकड़ चिल्ला-चिल्लाकर रोने और इस प्रकार कहने लगे—"बाबाजी! आप इनको किसी तरह जिला दीजिये। इसके बदले आप जो कुछ माँगेंगे, यहाँ तक कि हम लोग स्वयं अपनी जान आपको दे सकते हैं; बशर्ते कि आप इन्हें जिला दें।" बाबाजी तो यही चाहते ही थे; अतः उन्होंने कहा—"अच्छी बात है; एक बर्तन में दूध भरकर लाओ।" फ़ौरन हुक्म की तामील हुई। साधु ने सब के देखते ही देखते एक चुटकी राख उठाकर उस दूध में डाल दिया और कुछ पढ़ने लगे। फिर साधु ने कहा—"अच्छा, जो कोई

इस दूध को पी जाय, तो दूध के पीते ही पीनेवाला मर जायगा और यह लड़का जी उठेगा।" पर इस पर कोई तैयार न हुआ। माँ ने कहा—"शायद हम मर भी जायँ और लड़का न जिये, तो एक के बजाय दो मर जायँगे।" बाप ने कहा—"अगर हम जीते रहेंगे तो फिर लड़के हो जायँगे।" इसके बाद महात्माजी ने स्त्री को बुलाकर उससे कहा—"देखो, पुरुष से ही स्त्री की शोभा होती है, इसलिये तुम इस दूध को पी लो। तुम तो मर जाओगी और तुम्हारा पति जी उठेगा; क्योंकि स्त्री को पति के सामने ही मरना उत्तम होता है। उसके न रहने से तुम्हें अनेकों कष्ट भोगने पड़ेंगे। इसलिये तुम मेरी बात मानकर दूध को पी लो। तुम भी तो यही कहती थीं कि मैं मर जाऊँ और मेरा पति जीता रहे।" यह सुन स्त्री बोली—"बाबाजी! आखिर एक न एक दिन तो सभी को मरना होगा। इसलिये अगर यह आज बच भी जायँ तो फिर कभी मरेंगे ही। मैंने भी अभी संसार को नहीं देखा। रही गुजर की बात, तो हमारे बाप, भाई बड़े धनी हैं; मैं वहीं चली जाऊँगी और बड़े सुख से रहूँगी।" अर्थात् स्त्री ने भी पीछा छुड़ाया। पड़ोसी तो पहले ही चम्पत हो चुके थे। अतः बाबाजी ने कहा—"अच्छा, मैं ही दूध पिये लेता हूँ।" अब क्या था? सभी लोग खुश हो-होकर कहने लगे - "हाँ, हाँ; महाराज! आपको धन्य है। साधु-महात्माओं का जीवन तो उपकार ही के लिये होता है।" अंत में साधु ने उठाकर दूध पी लिया और लड़के को एक चपत जमाकर इस प्रकार बोले—"अरे झूठ प्रेमवाले सम्बन्धियों की माया में भूले हुए होनहार युवक! उठ और यह देख कि यह तुझ पर कितना प्रेम करते हैं।" युवक तो सब जानता ही था; उठकर साधु के पैरों पर गिरकर कहने लगा—"आप मुझे अपना चेला बना लें।

मैं अब तक अज्ञान में था। आज मुझे मालूम हुआ कि यह सब झूठा प्रेम है।" साधु ने कहा—"बेटा! उठो और ईश्वर में भक्ति रखते हुए संसार-सेवा में जीवन बिताओ। देखो, शास्त्र आज्ञा देता है—

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे नारी गृहे द्वारजनो श्मशाने।
देहश्चितायां परलोक मार्गे धर्मानुगो गच्छति जीव एकः॥

१०१—पत्नी-प्रताप

एक पतिव्रता स्त्री का पति परदेश से आया था। जाड़े के दिन थे; इसलिये उस स्त्री ने चूल्हे में आग जला पानी गरम करने के लिये रख दिया और आप पति के चरण दबाने लगी। उस पतिव्रता का एक डेढ़ वर्ष का छोटा बालक भी था, जो वहीं खेल रहा था। खेलते-खेलते वह लड़का आग में गिर पड़ा। उस स्त्री ने देखा तो सही; पर अपने पति को छोड़ उसे वहाँ जाने की हिम्मत न हुई। अतएव उसने उस पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और आप पैर दाबने लगी। मगर क्या मजाल कि अग्निदेव उस पतिव्रता के पुत्र को जला सकें?

सुतं पतन्तसमीक्ष्य पावके न बोधयामास पतिं पतिव्रता।
पतिव्रता शाप भयेन पीड़ितो हुताशनश्चन्दन पंक शीतलः॥

अर्थात् पतिव्रता ने अपने पुत्र को अग्नि में गिरते हुए देखकर भी पति को न जगाया; पर पतिव्रता के शाप से भय खाकर अग्निदेव चन्दन की तरह शीतल हो गये और उसे जला न सके। ठीक ही है—पतिव्रता धर्म की रक्षा करना ही स्त्रियों का प्रधान धर्म है। रामायण में अनुसूयाजी महारानी

सीता को क्या आज्ञा देती हैं। जरा ध्यान से देखिये। स्त्रियों के लिये वेद-वाक्य की भाँति उपयोगी होने के कारण कुछ अधिक पद्य लिखे गये हैं—

कह ऋषि-वधू सरल मृदुबानी।
नारि-धर्म कुछ जात बखानी॥
मात पिता भ्राता हितकारी।
मित सुखप्रद सुन राजकुमारी॥
अमित दान भर्ता बैदेही।
अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपतकाल परखिये चारी॥
वृद्ध रोगवश जड़ धनहीना।
अन्ध बधिर रोगी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किय अपमाना।
नारि पाव यमपुर दुख नाना॥
एकहि धर्म येक ब्रत नेमा।
काय बचन मन पति-पद प्रेमा॥

या भर्तारं समुत्सृज्य रहश्चरति केवलम्।
ग्रामेवा शूकरी भूयाद्वकुली वाश्वविड्भुजा॥
अनुकूला न वाग्दुष्टा दक्षा साध्वी पतिव्रता।
एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरेवस्त्री न संशयः॥

इसी सम्बन्ध में एक और दृष्टान्त है—एक योगी एक

वृक्ष के नीचे बैठा हुआ ईश्व[illegible] में मग्न[illegible] । सहसा ऊपर दो कौवे आपस में लड़ने लगे। उनके काँव-काँव से ऋषि-जी बड़े क्रोधित हुए और ज्यों ही उन्होंने अपनी दृष्टि ऊपर की, त्यों ही वे दोनों कौवे भस्म होकर नीचे गिर-पड़े। योगीजी अपना यह प्रभाव देख बेहद प्रसन्न हुए। उनके मन में अपने तेज का बड़ा गर्व हुआ। वे समझने लगे कि मेरे ऐसा तप-वाला कोई दूसरा संसार में न होगा। संयोगवश एक दिन आप एक नगर में गये। वहाँ उन्होंने एक गृहस्थ के घर जा भिक्षा माँगने लगे। भीतर स्त्री थी। उसने भीतर से ही कहा—"ज़रा ठहरो, अमुक नगर में एक ब्राह्मण के घर आग लगी है, ज़रा उसे बुझा लूं।" यह कहकर उस स्त्री ने चुल्लू भर पानी अपने घर के एक कोने में फेंक दिया। उसके इस कर्तव्य से ऋषि को बड़ा क्रोध आया और वह गर्जते हुए बोले—"अरी अभागिनी! क्यों तू मुझे रोकती है और मेरा अपमान करती है? क्या तू मेरे तप-तेज से जानकार नहीं है? मैं चाहूँ तो अभी तुम्हें एक क्षण में भस्म कर डालूं। अगर अपनी खैर चाहती है, तो आकर क्षमा माँग।" यह सुन वह स्त्री हँसती हुई योगी के पास आकर कहने लगी—"महाराज! यह ठीक है कि आप बड़ तेजस्वी महात्मा हैं; किन्तु इधर भी आप उन कौवों को ही न समझो कि जैसा आपने उन्हें जलाया, वैसे सब को जला देंगे।" अब तो योगी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने हाथ जोड़कर क्षमा माँगी। फिर उन्होंने पूछा—"आपको यह बातें कैसे मालूम हुईं?" स्त्री ने उत्तर दिया—"मैं एक साधा-रण स्त्री हूँ; किन्तु सर्वदा पति की आज्ञा में रहती हूँ। इसलिये मुझको सारी बातें मालूम हो गई थीं।" साधू ने पूछा—"आग कहाँ लगी थी और यहीं से आपने कैसे बुझा दिया?"

उत्तर में स्त्री उस नगर का पता बताती हुई बोली—"महाराज! उस नगर में मेरी एक बहिन रहती है। संयोग से आज उसके घर में आग लग गई और एक कोना जल भी गया। यह देख मैंने अपने पतिव्रत के बल से यहीं से बुझा दिया। यदि विश्वास न हो, तो देख आइये।" योगीजी चले गये और इस सच्ची घटना का पता लगाकर लौटे और उस स्त्री के पैर पर गिर पड़े। ठीक ही है, याज्ञवल्क्यजी ने भी कहा है—

पति सुश्रुषैव स्त्रीकान्न लोकान समश्नुते।
दिवः पुनरिहायाता सुखानामम्बुधिर्भवेत्॥

अर्थात् पति की सेवा कर कौन स्त्री उत्तमलोक प्राप्त नहीं करती! उसे स्वर्ग से भी अधिक सुख यहीं पर प्राप्त होता है।

न व्रतैर्नोपवासैश्च धर्मेण विविधेन च।
नारी स्वर्गमवाप्नोति पति पूजानात्॥

स्त्री को व्रत-उपवास आदि नाना प्रकार के धर्म से स्वर्ग की प्राप्ति नहीं होती; किन्तु पति-सेवा से ही उसे स्वर्ग मिलता है। क्या आशा की जाय कि आजकल की स्त्रियाँ भी इसी पवित्र पथ पर चलेंगी और लोग अपनी स्त्री, पुत्री और बहिनों को पतिव्रत-धर्म की शिक्षा देने की कृपा करेंगे?

१०३-पारस

एक दरिद्र ब्राह्मण दरिद्रता से तंग आकर एक स्मशान में जा तपस्या करने लगा। उसकी तपस्या से प्रवाहित होकर तथा उसकी दीन दशा पर दया करके एक महात्मा ने उसको एक पारस पत्थर दिया और कह दिया कि सात दिन में

जितना चाहो लोहा छुलाकर सोना वना लो। ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ और सोचने लगा कि जिस तरह हो अधिक से अधिक सोना वना लें; क्योंकि फिर ऐसा नादिर मौक़ा न मिलेगा। शोक कि इस समय उसके घर काफ़ी लोहा न था। उसने सोचा कि सात दिन वहुत हैं इतने ही समय में किसी महाजन से कुछ रुपया क़र्ज़ा लेकर लोहा खरीदें और उससे घर भर दें। फिर एक वार ही सबको छुलाकर सोना वना डालें। यह विचारकर किसी महाजन की तलाश करने लगा; पर उसे जन्म का दरिद्र जान किसी ने भी कर्ज़ा देना स्वीकार न किया; क्योंकि वे जानते थे कि इसे रुपया देने से मारा पड़ने का खतरा है। पर संसार में सभी तरह के लोग हुआ करते हैं। एक सूदखोर ने अधिक सूद पर कुछ रुपया दे दिया। अव ब्राह्मण देवता को यह चिन्ता हुई कि कहाँ सस्ता लोहा मिलेगा ? एक आदमी ने कहा—"ताता कम्पनी में लोहा हद से सस्ता है। वहीं से खरीदो।" अव क्या था! आप कम्पनी के लिये बम्बई चले। चौथे दिन तो आप वम्बई पहुँचे, पाँचवे दिन लोहा खरीद घर चले। ठीक छठवें दिन संध्या समय आप अपने समीप के स्टेशन पर लोहा-समेत पहुँच गये। मगर शोक! आपका घर देहात में था। इसलिये लोहे का घर पहुँचना मुश्किल हो गया। खैर; दस गुनी, बीस गुनी मजदूरी देने पर उनको सवारी-गाड़ियाँ मिलीं। झट लाद-लूदकर घर चले। परन्तु यह सत्य है कि सर्वदा भाग्य ही फलता है। इस कथनानुसार जब लोहे से भरी गाड़ी आधे रास्ते में पहुँची; तो संयोग से वह गाड़ी विगड़ गई। अब क्या था, समय भी बीत रहा था और कोई दूसरी तदबीर न थी। सिर पर हाथ धर हाय! कर

बैठ गये। पर 'अब पछिताये होत क्या, जब चिड़ियाँ चुन गईं खेत' ब्राह्मण देवता सिर पटककर रह गये और समय बीत जाने पर बटिया लेने महात्माजी भी आ पहुँचे। ब्राह्मण देवताजी विनय करने लगे; पर उनको अब एक क्षण की भी फिर मुहलत न दे महात्माजी पारस ले चल खड़े हुए। इधर ब्राह्मण सोचते ही रह गये।

प्यारे पाठक! यह तो दृष्टान्त है, परन्तु अब इसके दार्ष्टान्त पर ध्यान दीजिये। पारसरूप यह मनुष्य की देह है। भगवान ने इसे जीवात्मा को देकर कह दिया है कि इससे जितना धन, धर्म आदि चाहो संचय करके अपना लोक-परलोक सुधारो; परन्तु याद रक्खो—"शतायुर्वैपुरुषः शत जीवेम सरदः' के अनुसार नियत समय पर ले लूँगा।" परन्तु अज्ञानी जीव माया आदि झंझटों में भूलकर धर्म करने में आज, कल करते-करते अपनी सारी आयु ही बिता देता है और अन्त में पछताते हुए कहता है—

जन्मेदं वन्ध्यतां नीत भवभोगोपलिप्सया।
कांच मूल्येन विक्रीतो हन्त! चिन्तामणिर्मया॥

अर्थात्—मैंने यह जन्म सांसारिक भोगों की वासना में डाल दिया। हाय! मैंने चिन्तामणि को काँच के भाव वेंच दिया। इसी भाव को लेकर एक दूसरा कवि कहता है—

महता पुण्य पुण्येन क्रीतेयं कायनौस्त्वया।
परं दुःखोदधेर्गन्तु त्वरयावन्न विध्यते॥

अर्थ—बड़े पुण्य-रूपी हाट से तूने यह मनुष्य-देह-रूपी नाव संसार से पार हो जाने के लिये ली थी। इसलिये जब तक यह टूट न जाय समुद्र से पार होने का उपाय शीघ्र

कर। इसलिये जितनी जल्दी हो सके इस शरीर से धर्म कमाना चाहिये।

काल करे सो आज कर, आज करे सो अब।
पल में परलय होयगी, बहुरि करोगे कब॥

१०४-उल्टा अर्थ

एक महात्मा ने एक सेठ को उपदेश देते हुए कहा कि—

शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत।
लक्षं विहाय दातव्यं कोटिन्त्यक्त्वा हरिम्भजेत॥

अर्थात् सौ काम छोड़कर भोजन करना और हज़ार काम छोड़ स्नान करना चाहिये। उसी प्रकार लाख काम छोड़कर दान करना और करोड़ काम छोड़कर परमात्मा का भजन करना उचित है। सेठजी ने इस पद को कंठ तो कर लिया; परन्तु इसका भाव उनकी समझ में न आया। यदि कोई बात होती, कोई कुछ लेने आता या अन्य अवसर की भी कोई बात होती, तो झट आप इसी श्लोक को कह देते कि लोग समझें कि यह संस्कृत जानते हैं। इसके सिवा यदि दूसरे श्लोक को कहने के लिये कहा जाता, तो आपकी नानी मर जाती। यही तो एक पद्य उन्होंने जन्म भर में कंठ किया था, फिर वे कैसे दूसरा कहते? एक दिन भरी सभा में जब सेठजी ने इस पद्य का पाठ किया तो किसी मसखरे ने उनसे पूछा—"सेठजी इसका तनिक दया करके अर्थ भी तो समझाइये।" सेठजी खाँसते हुए बोले—"अरे इसमें कौन सी बारीकी है, जो मैं इसका अर्थ कहूँ। खैर, सुनो—पहला पद है कि "शतं विहाय भोक्तव्यं" इसका अर्थ

यह है कि जब सौ रुपये इकट्ठे हो जायँ तो मनुष्य को भोजन करना चाहिये ; दूसरा पद यह है "सहस्रं स्नानमाचरेत्" अर्थात् हज़ार रुपये हो जाने पर स्नान किया जाय ; तीसरे पद अर्थात् "लक्षं विहाय दातव्यं" के अनुसार लाख रुपये हो जाने पर दान देना शुरू करना चाहिये ; फिर "कोटिन्त्यक्त्वा हरिम्भजेत्" की आज्ञा से करोड़ मुद्रा प्राप्त हो जाने पर भगवत-भजन करे।" यह उल्टा अर्थ सुन सभी लोग हँस पड़े। ठीक है—"पंडित वही जो गाल बजावा।"

१०५—लालच

एक बार एक शेर हाथ में एक सोने का कड़ा लेकर गंगा नदी में खड़ा था और पुकार-पुकारकर कहता था—"ऐ बटोही, ऐ बटोरी। मेरे पास एक सोने का कड़ा है। आकर ले जाओ।" संयोगवश एक ब्राह्मण देवता कहीं से आ निकले। शेर ने अपनी अर्ज़ी उनको भी सुनायी। ब्राह्मण देवता सोचने लगे कि ऐसा सुअवसर बड़े भाग्य से मिलता है ; पर यहाँ तो जान जाने का भय है। साथ ही उनके विचार में यह भी आया कि धन के लिये जितने काम होते हैं वे सभी जोखिम ही के हुआ करते हैं। इस विचार से उनके मन में दो प्रश्न उत्पन्न हुए। एक यह कि शेर मांसाहारी है। इसके पास जाना जान-बूझकर अपने प्राण को खोना है। क्योंकि शास्त्र मना करता है कि नदी, राजा, शस्त्रधारी और नखवालों का कभी भूल-कर भी विश्वास नहीं करना चाहिये। अंत में सोच-विचार-कर उसने शेर से इस दान के भेद को पूछना ही निश्चय किया। अस्तु, ब्राह्मण देवता बोले—"देखें, तुम्हारा कड़ा कहाँ

है ?" बाघ ने हाथ ऊँचा करके कड़े को दिखला दिया। तब ब्राह्मणदेव फिर बोले—"पर तुम लोग तो हम लोगों को खाने-वाले हो। इसलिये तुम पर हम विश्वास क्यों करें ?" शेर ने उत्तर दिया—'हाँ, महाराज ! आपका कहना यथार्थ है ! हमारी जाति ही मनुष्य को खाती है। हमने भी युवावस्था में न मालूम कितने मनुष्यों को मारा है, कितने निर्दोषी गौ ब्राह्मण मेरे हाथ से मारे गये हैं, इसी पाप से हमारी स्त्री मर गई, लड़के मर गये और हमें भी नाना प्रकार के दुःख-शोक सहने पड़ते हैं। एक धार्मिक ने हमें उपदेश दिया है कि तुम दान पुण्य किया करो। उन्हीं के आदेशानुसार हम नित्य इस गङ्गा में स्नान करके एक सोने का कड़ा ब्राह्मण को दान में देते हैं। न अब हमारे मुंह में दाँत हैं और न हाथ में नाखून ही हैं। अब वृद्धावस्था के कारण निठुराई भी छोड़ दी है। लोभ को तो हमने यहाँ तक त्याग दिया है कि अपने हाथ का कंगन तक दिये देते हैं। फिर भी वाघ मनुष्यों को खाते हैं, इसका भला कलंक कैसे मिट सकता है ? हमने धर्म-शास्त्र में भी पढ़ा है कि दान सुपात्र ही को देना ठीक है। इसी ख्याल से आज का दान मैंने तुमको देने का विचार किया है। इसलिये तुमको उचित है कि इस नदी में स्नान कर इसे ले लो।" बाघ की इन बातों पर ब्राह्मण को विश्वास हो गया और वह नहाने के लिये नदी में पैठा; पर उस स्थान पर इतनी कीचड़ थी कि वह ब्राह्मण उस दलदल में फँस गया। उसको दलदल में फसंते देख बाघ बोला—"हाँ ! हाँ !! बड़े कीचड़ में फँस गये। अच्छा तुम्हें निकाल दें।" यह कहकर वह शेर उस ब्राह्मण के पास चला गया और पकड़कर उसे मार डाला। इस प्रकार 'लालच' के वशीभूत हो ब्राह्मण उस शेरका शिकार

बना। इस उपाख्यान से पहिली शिक्षा यह मिलती है कि मनुष्य को कभी भी लोभ में नहीं आना चाहिये। दूसरी शिक्षा यह है कि शत्रु पर कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये।

लोभात् क्रोधा प्रभवति क्रोधात् द्रोहा प्रवर्तते।
द्रोहेति नरकं यान्ति शस्त्रज्ञाऽपि विचक्षणा॥

१०६—निःशंक रहने का फल

मनुष्य को उचित है कि सुख, धन और ऐश्वर्य को पाकर निःशंक न हो जाय। उसको इसके लिये परमात्मा को ध्यान देकर भजना चाहिये, उसे धन्यवाद देना चाहिये। जो लोग ऐश्वर्य में भूलकर परमात्मा से विमुख हो जाते हैं, उन्हें महान दुःख और शोक प्राप्त होता है। जैसे इस विषय का एक दृष्टान्त प्रसिद्ध है—

सुना जाता है कि ईरान में इब्राहीम अहमद नाम का एक राजा था। बड़ा शौक़ीन और ऐयाश-मिज़ाज का बादशाह हुआ है। कहा जाता है कि वह सवा मन फूलों की सेज पर सोता था। एक दिन एक बाँदी, जिसके ज़िम्मे सेज सजाने का काम था, अपने मन में यह सोची कि न मालूम इस सेज पर सोने से कितना सुख मिलता होगा, ऐसा विचारकर इधर-उधर देख उस सेज पर जा सोई। फूलों की कोमलता तथा उसकी सुगंधि से दासी को इन्द्रासन का सुख मिला, इससे लेटते ही उसे नींद आ गई। उधर नियमित समय पर बादशाह भी आया और उस सेज पर सो रहा। यहाँ पाठकों को बता देना उचित प्रतीत होता है कि दासी तब भी फूलों में छिपी हुई सो रही थी। फूलों की अधिकता से उसका पता बादशाह को भी सोते समय नहीं मिला। कुछ देर के

बाद जब उसने करवट ली, तो बादशाह को बड़ा डर मालूम हुआ, जिससे वह चिल्ला उठा। बादशाह की चीख सुन और भी बहुत से आदमी दौड़ आये। इस धूम-धाम को सुनकर बाँदी जाग उठी। बाँदी को देखते ही बादशाह क्रोध से पागल हो गया और उसने बिला कुछ पूछे-जाँचे दासी को सौ कोड़े मारने की आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही चोबदार उस दासी को पकड़ ले गये और कोड़े मारने लगे। बाँदी ने पचास कोड़े तो हँस-हँसकर खाये, फिर पचास कोड़ों के मार खाते समय रोने लगी। उसके इस व्योहार से चोबदारों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन सबों ने बादशाह से इन बातों को कह दिया। यह सुन बादशाह ने उस बाँदी को दरबार में बुलाया और उसके हाजिर हो जाने पर उससे पूछा—"क्यों री दासी! मार खाते समय पहले क्यों हँसी और फिर क्यों रोने लगी?" उत्तर में दासी ने कहा—"जनाब! आपके इस इन्द्रासन को भी लज्जित करनेवाली पुष्प-शय्या पर सोने के सुख के आगे ये कोड़े की मार किस गिनती में हैं, इसलिये तो मैं हँसी; फिर बीच में मुझे इस बात की चिन्ता हुई कि जहाँ दो घड़ी इस सुख शय्या पर निशंक हो सोने से मुझे इतनी सजा दी गई है, तो जो उस पर नित्य निशंक-भाव से सोते रहते हैं, ईश्वर जाने उनकी क्या दुर्गति होगी? न मालूम उसे क्या-क्या भुगतने पड़ेंगे? इसी ख़याल से मुझको रुलाई आ गई है।" बाँदी के इस मनोभाव को सुनकर इसका प्रभाव बादशाह के दिल पर ऐसा पड़ा कि उसने उसी दिन फ़क़ीरी अख़्तियार कर ली और सेज को छोड़ ज़मीन पर सोने लगा। सुख की अभिलाषा छोड़ राजसी ठाट-बाट को त्याग, ईश्वर-भजन तथा लोक-सेवा में जीवन बिताने लगा।

१०७–जैसे को तैसा

शहर बुग़दाद में एक चतुर नाई रहता था। वह बातें बनानें तथा हजामत बनाने—दोनों कामों का उस्ताद था। उसके गुणों पर मुग्ध होकर वहाँ के धनी लोग उस पर लट्टू हो रहे थे और सिवा उसके किसी दूसरे से बाल बनवाना पसंद नहीं करते थे; यहाँ तक कि वह नाई उस देश के ख़लीफ़ा के भी बाल बनाता। इससे उसको पूरा अभिमान हो गया। एक दिन की बात है कि एक लकड़हारा गधे पर लकड़ियाँ लादे हुए उस नाई की दूकान के सामने से होकर बेचने के लिये बाजार में जा रहा था। नाई को भी लकड़ी की जरूरत थी। उसने उससे दाम पूछा। लकड़हारे ने कहा—"चार आने।" ख़ैर; लकड़ियों को नाई ने ख़रीद लिया और दाम चुकाकर कहा—"लकड़ियों को यहाँ गिरा दो।" लकड़हारे ने लकड़ियों को नाई के कहने के मुताबिक गिरा दिया और गदहा लेकर चलने लगा, परन्तु नाई ने उसे रोककर कहा—"अजो! कुल लकड़ियाँ क्यों नहीं देते? मैंने कुल लकड़ियाँ खरीदी हैं।" लकड़हारा बेचारा तो सारी लकड़ियाँ दे चुका था, फिर देता क्या। उसने उत्तर दिया—"भाई! अब तो मेरे पास एक भी लकड़ी नहीं है, दूं कहाँ से?" यह सुनकर नाई ने गधे की काठी की ओर संकेत करके कहा—"यह मुझे दे दो" बेचारे लकड़हारे ने उसे बहुत समझाया कि भाई! लकड़ियों के साथ काठी नहीं बिका करती, परन्तु उस नाई ने एक भी न मानी और काठी ले ही ली। लकड़हारा रोता-पीटता काज़ी के पास गया और अपनी फ़रियाद सुनाई; पर वह काज़ी भी उसी नाई से बाल बनवाता था, इसलिये उसने इस बात पर ध्यान नहीं

दिया। लकड़हारा निराश होकर दूसरे काजी के पास गया, पर वहाँ से भी वह बेचारा निकाला गया। अंत में उसने खलीफ़ा के दरबार में अपनी अरज़ी पेश की। खलीफ़ा अपने न्याय के लिये बड़ा प्रसिद्ध था और था भी वह न्यायप्रिय। खलीफ़ा ने उसके मुकदमे का सारा हाल सुनकर लकड़हारे से कह दिया कि भाई! तुम्हारा मामला बेजड़ है। ख़ैर, संतोष धारण करके अपने घर लौट जाओ। साथ ही खलीफ़ा ने उसके कान में कुछ और कह दिया, जिससे वह बेचारा अपने घर चुपचाप लौट गया।

कुछ दिनों बाद वही लकड़हारा फिर नाई की दूकान में गया और बड़ी नम्रता से सलाम करके ऐसा भाव दिखलाया कि मानो उसके हृदय में पहिले के झगड़े की बातें बिल्कुल ही नहीं हैं। नाई यह देख बड़ा प्रसन्न हुआ और उसे बैठने को कहा। लकड़हारे ने बैठकर नम्रता से कहा—"भाई! मेरा ब्याह होनेवाला है। इसलिये आप मेरी और मेरे एक भाई! की हजामत बना दें। इसके बदले में जो कुछ आज्ञा होगी मैं आपको दूंगा।" नाई ऐसे-वैसे साधारण मनुष्यों के बाल नहीं बनाया करता था। अतः उसने कहा—"अच्छा, अगर तुम एक रुपया दो तो मैं हजामत बना दूं।" लकड़हारे ने स्वीकार कर लिया और उससे अपनी हजामत बनवाने लगा। जब नाई उस कड़ह की हजामत बना चुका, तब उसने कहा—"अच्छा, जाओ अपने साथी को भी बुला लाओ।" लकड़हारा बाहर गया और थोड़ी देर बाद अपने साथी गधे को नाई के सामने खड़ा किया और कहा—"यह मेरा साथी है, इसकी ह्जा' बना दो।" गधे को देख नाई बहुत बिगड़ा और कहा "कहीं गधे की भी हजामत बनती है? मैं इसकी

नहीं बना सकता।" इस विषय में दोनों का झगड़ा यहाँ तक बढ़ा कि खलीफा के न्यायालय में विचारार्थ जाना पड़ा। न्यायालय में जाकर खलीफा से लकड़हारे ने कहा—"हुजूर! देखिये, नाई ने वादा-खिलाफी किया है; क्योंकि उसने वादा किया था कि एक रुपये में तुम्हारी और तुम्हारे साथी की हजामत बना दूँगा। खैर, मेरे बाल तो बन गये। मेरे साथी इस गधे की हजामत इन्हें बनाना चाहिये था; पर यह नहीं बनाता।" खलीफा ने नाई से पूछा—"लकड़हारा सच कहता है? या झूठ?" नाई कहने लगा—"हाँ यह तो ठीक है कि हमने रुपये में इनकी और इनके दोस्त की हजामत बनाना मंजूर किया था, पर यह हमें क्या मालूम कि इसका साथी गधा है? कहीं गधे की भी हजामत बनती है?" यह सुन खलीफा ने उत्तर दिया—"निस्संदेह गधों की हजामत नहीं बना करती, इसे मैं भी मानता हूँ, पर जलाने की लकड़ियों के साथ काठी भी तो नहीं बिका करती तब तो तुम्हें जरूर ही लकड़हारे के साथी गधे की हजामत बनानी पड़गी।"

अब क्या था? खलीफा की आज्ञा से सैकड़ों आदमियों के सामने उस धूर्त और चालाक नाई को गधे की हजामत बनानी पड़ी जिससे उसकी बड़ी बेक़द्री हुई। उसकी सारी शेखी धूल में मिल गई। सच है जैसे को तैसा ही ठीक है।

१०८—दो चालाक

दर्जनेभ्यो विभेतव्यं मायिभ्यस्त्वरितं जनाः।
दत्ता मुद्रा नहिद्वाभ्यां भोजनन्तु कृतं यथा॥

अर्थ—हे मनुष्यो ! खोटे मनुष्यों से सर्वदा डरकर बचते रहना चाहिये ; क्योंकि वे छल करने से कभी नहीं चूकते । दृष्टान्त में एक कथा नीचे लिखी जाती है ।

दो चालाक आदमी सैर करने चले । जब वे बाजार में पहुँचे, तो सोचने लगे कि मिठाई किस प्रकार खाई जाय ? पैसा तो पास में है ही नहीं । दूसरे ने कहा—"अजी, चलो भी तो ! अगर पैसा नहीं है, तो बुद्धि तो पास में है ।" अतः वे लोग एक दूकान में पहुँचे । पहिले ने तो मिठाई तौलाई और वहीं वह खाने लगा । फिर दूसरा पहुँचा । उसने भी खाने-भर को मिठाई तौलाई और वहीं बैठकर वह भी खाने लगा । इतने में पहला, जो खा चुका था, बिना दाम दिये ही चलने लगा । हलवाई ने अपने दाम माँगे, तो तड़पकर बोला—"क्या कहा ? क्या दाम ! दाम तो पहिले ही मैंने दे दिया था । फिर क्यों दूँ ।" दोनों में झगड़ा होने लगा जिससे कुछ लोग और भी इकट्ठे हो गये । लोगों ने इस झगड़े को सुनकर कहा—"भाई ! वह जो बैठा खा रहा है, उससे पूछना चाहिये ।" अभी लोग पूछने ही वाले थे कि वह दूसरा ठग कुल्ला करके खाँसता हुआ आवेश के साथ कहने लगा—"वाह ! वह बेचारा तो पहले ही दाम दे चुका है, फिर क्यों माँगते हो ? भाई ! देखना, मैंने जो रुपया दिया है उसे भूल न जाना और लाओ बाकी पैसे फेर दो ।" हलवाई बेचारा चुप हो रहा और लोग उसे धिक्कारने लगे । इधर वे दोनों ठग मिठाई उड़ा और उसी से पैसे ले पान-मसाला उड़ाते-हँसते हुए घर गये । सच कहा है—चोरों की छत्तीसी बुद्धि हुआ करती है ।

१०६—सत्य

एक साहूकार का लड़का बड़ा दुराचारी था। शराब पीना; गाँजा, भाँग आदि नशीली वस्तुओं का प्रयोग करना; रंडीबाजी करना; उसका नित्य का काम था। लोग उसे बहुत समझाते और कहते कि क्यों इन कुकर्मों में लिप्त हो! कुछ दिनों बाद उसे भी अपने दुष्कर्मों का फल मिलने लगा। अंत में वह अनेकों तरह के उपाय सोचने लगा कि किसी तरह उसकी बुरी आदतें छूट जायँ; परन्तु वह न छूटीं। अन्त में एक दिन वह एक महात्मा के पास गया और उनसे हाथ जोड़ कर पूछा—"महाराज! कोई ऐसी तदबीर बताइये जिससे मैं इन दुष्कर्मों से बचूं।" महात्माजी बोले—"बच्चा! यदि सच कहा कर, तो तुझ से कोई दुष्कर्म हो ही नहीं सकता। यह सत्य ही तुझको सारे दुष्कर्मों से बचाता रहेगा।" साहूकार के लड़के ने सत्य बोलने का दृढ़ निश्चय कर लिया और घर लौट आया। घर जाकर वह नित्य के नियमानुसार शराब लेने के लिये आबकारी की दूकान पर जाने लगा। रास्ते में उसका बड़ा भाई मिला। उसने पूछा—"कहाँ जाते हो?" इस प्रश्न के होते ही उसे बड़ा संकट प्राप्त हुआ। उसने सोचा कि यदि सत्य कहता हूँ तो भाई मेरी बड़ी फजीहत करेंगे और झूठ कहता हूँ, तो व्रत टूटता है। ऐसा सोचकर बिना उत्तर दिये ही चुपचाप घर लौट आया। इसी तरह दूसरे दिन वह एक वेश्या के घर जा रहा था। रास्ते में उसके बाप मिले। बाप ने पूछा—"बेटा, कहाँ जाते हो?" वह फिर असमंजस में पड़ा और उत्तर न दे लौट आया। इसी तरह उसके सारे दुष्कर्म धीरे-धीरे छूट गये। दुष्कर्म छूटते ही कुछ दिनों में वह एक बड़ा भारी महात्मा

हो गया। सच है—"सत्य से बढ़कर दूसरी कोई वस्तु नहीं है
पहिले भी हमारे यहाँ सत्य का बड़ा प्रचार था। यहाँ तक कि-

यदि भूलकर अनुचित किसी ने काम कर डाला कभी
तो वह स्वयं नृप के निकट दण्डार्थ जाता था तभी

एक समय की बात है कि शंख और लिखित नाम
दो भाई रहते थे। वे किसी नदी के तट पर किसी जंग
भिन्न-भिन्न स्थानों पर रहकर तपस्या किया करते
एक दिन लिखित मुनि अपने बड़े भाई शंख के आश्र
गए और बिना उनकी आज्ञा के उस आश्रम के वृक्ष पर से
तोड़कर खा गये। जब बड़े भाई को यह बात मालूम
तो उन्होंने लिखित से कहा—"भाई! तुमने बिना मेरी
के मेरे फल खा लिये हैं, इससे तुमको चोरी का अप
लगता है। इस वास्ते तुम्हें इसका दंड भोगना चाहिये। उ
राजा के पास जाओ और उनसे दण्ड देने की प्रार्थना
भाई की बात सुन लिखित मुनि राजा के पास गए और उ
अपना अपराध कह, दण्ड देने की प्रार्थना की। राजा ने
सत्य बोलनेवाला समझकर क्षमा कर दिया; परन्तु लि
मुनि को इससे संतोष न हुआ और अपने दोनों हाथ क
लिये। फिर अपने बड़े भाई शंख के स्थान पर आए और
क्षमा माँगी। जब भाई ने उन्हें क्षमा किया, तब कहीं उन्हें श
मिली और फिर अपने आश्रम में जाकर तपस्या करने लगे।

अब भी लिखित मुनि का चरित वह लखत है इतिहा
अनुपम सुजनता सिद्ध है जिसके अमल आभास

❀ इति शुभम् ❀